अनन्य

'हिंदी की नयी उड़ान'

मासिक पत्रिका

मार्च-2023

(अंक-10)

अनन्य

'हिंदी की नयी उड़ान'

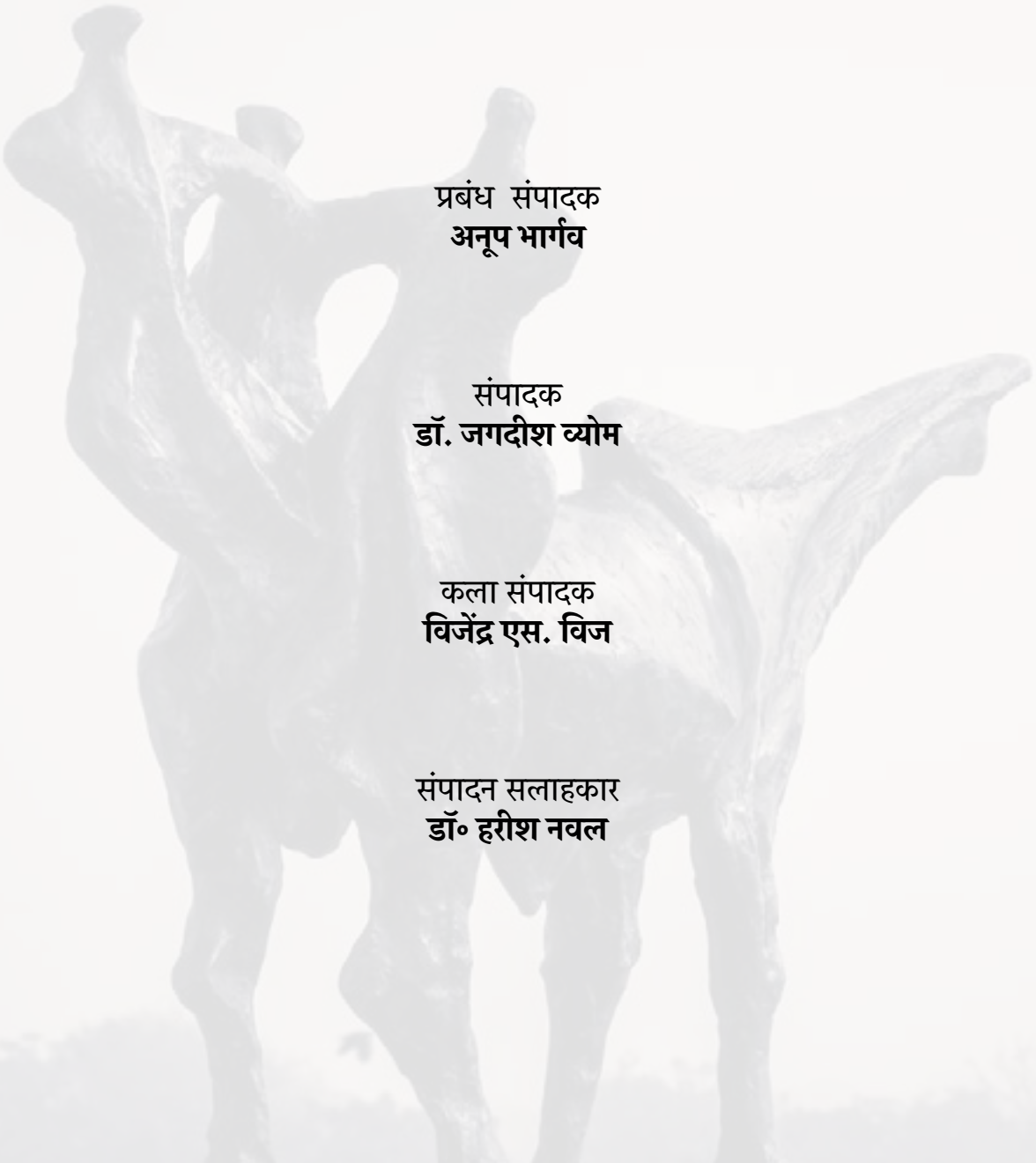

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ. जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेंद्र एस. विज

संपादन सलाहकार
डॉ॰ हरीश नवल

भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

अनन्य
मासिक पत्रिका
मार्च -2023 (अंक-10)
भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ॰ जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेन्द्र एस. विज

संपादन सलाहकार
डॉ॰ हरीश नवल

तकनीकी सलाहकार
बालेन्दु शर्मा दाधीच

संपादन सहयोग
आभा खरे / स्वरांगी साने

व्यवस्था
अमित खरे / गीता घिलोरिया

कलाकार : रमेश बिष्ट
Artist: Ramesh Bisht
Unknown Riders-1
Bronze, 18x48x66 cm

सर्वाधिकार सुरक्षित
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के अन्यत्र उपयोग हेतु लेखक / प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित सामग्री हेतु सम्बंधित लेखक पूरी तरह से उत्तरदायी होंगे।

संपर्क
रचनाकार अपनी रचनाएँ अनन्य में प्रकाशनार्थ यहाँ भेजे : sampadak.ananya@gmail.com

पाठक अपनी प्रतिक्रियाएँ और सुझाव यहाँ भेजें
pratikriya.ananya@gmail.com

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप ऑडिओ रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप विडियो रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

संपादकीय
डॉ॰ जगदीश व्योम 06

गीत/नवगीत : डॉ. सुभाष वसिष्ठ 07
सात गीत

10

कहानी : सुधा ओम ढींगरा
कॉस्मिक की कस्टडी

17

ग़ज़ल : आलोक यादव
चार ग़ज़लें

लेख : प्रगति टिपणीस 19
'हिन्दी भाषा, रादस्त नाशा' - हमारी ख़ुशी का
कारण हिंदी भाषा है

व्यंग्य : शशि पुरवार / 'मूर्खता की परछाई' 25

ग़ज़ल : संजीव गौतम / चार ग़ज़लें 28

लघुकथा : प्रेरणा गुप्ता / दो लघुकथाएँ 31

कला : जय त्रिपाठी 33
भारतीय कला-जगत की समृद्ध परंपरा के कलाकार
: रमेश बिष्ट

प्रतिक्रियाएँ : पाठकों की बात 40

चित्र / चित्रकार : राजेश प्रसाद श्रीवास्तव पृष्ठ भाग
आय ऍम अ स्टोन लेडी / ऑयल शेविंग आन
कैनवस /66"48" इंच

दो शब्द...

हिंदी का विस्तार निरंतर हो रहा है, यह सुखद है। प्रवासी भारतीय जिन-जिन देशों में रह रहे हैं, उनमें से अधिकतर हिंदी का प्रयोग किसी न किसी रूप में करते हैं और इस तरह हिंदी को वैश्विक स्तर पर विस्तार देने में उनकी यह बड़ी भूमिका कही जा सकती है। अपनी भाषा के प्रति आदर और उसके प्रति सतत सजग रहना तथा उसमें बातचीत करके गौरव की अनुभूति करना भाषा प्रेम तो है ही, भाषा को विस्तार देना और उसे लोकप्रिय बनाने की दिशा में एक प्रयास भी है। हिंदी भाषा के लिए सरकार क्या कर रही है ? सरकार क्या नहीं कर रही है ? हिंदी की संस्थाएँ ये नहीं कर रहीं हैं, वह नहीं कर रहीं हैं... आदि आदि में हम अपनी बहुत सारी ऊर्जा और बहुत सा समय नष्ट करते रहते हैं। जबकि हम हिंदी के लिए छोटे-छोटे प्रयास, जो अपने स्तर से किए जा सकते हैं, कर सकते हैं। इन छोटे-छोटे प्रयासों से हम हिंदी का बड़ा कार्य कर सकते हैं। उदाहरण के लिए अपने आस-पास देखें तो आपको दूकानों पर, सरकारी- गैर सरकारी कार्यालयों के आगे, धार्मिक स्थलों पर, दीवारों आदि पर विज्ञापन, सूचना, बैनर आदि में वर्तनी की तमाम अशुद्धियाँ दिख जाएँगीं, जैसे- चिह्न का 'चिन्ह', श्रीमती का 'श्रीमति', पुरुष का 'पूरूष', विद्यालय को 'विधालय', आदि लिखे मिल जाएँगे।

इन अशुद्धियों को अपने स्तर से ठीक करा सकें, तो यह भी हिंदी की बड़ी सेवा है। क्योंकि न जाने कितने विद्यार्थी, सामान्य जन इन्हें पढ़-पढ़कर गलत लिखने की आदत डाल लेते हैं और फिर हमेशा के लिए गलत वर्तनी लिखने के आदी हो जाते हैं। यह देखने में छोटा कार्य लग सकता है, लेकिन अपने-अपने स्तर से यदि दो-दो बैनर या विज्ञापनों की वर्तनी भी हम ठीक करा सकें, तो यह हिंदी के लिए हमारा बड़ा योगदान हो सकता है। यदि आप अपने स्तर से हिंदी के लिए वास्तव में इस तरह का कुछ कार्य कर सकें तो पत्र लिखकर या वाट्सएप पर अवश्य सूचित करें। इस बार आपको हिंदी की सेवा का यह छोटा सा कार्य सौंपा जा रहा है, कर सकें तो हमें प्रसन्नता होगी और अन्य हिंदी प्रेमियों को इससे प्रेरणा मिलेगी।

अनन्य के प्रकाशन में किसी भी प्रकार का सहयोग करने वाले सभी साथियों का, अनन्य को पढ़ने वाले समस्त पाठकों का और अनन्य के लिए रचना भेजने वाले सभी रचनाकारों का हार्दिक आभार।

'अनन्य' का यह अंक आपको कैसा लगा, आपकी प्रतिक्रियाओं की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

-डा० जगदीश व्योम
संपादक, अनन्य

सुभाष वसिष्ठ

सिकन्दरपुर काकौड़ी, ज़िला हापुड़ (उ.प्र.) में जन्मे सुप्रसिद्ध नवगीत कवि डा सुभाष वसिष्ठ वर्तमान में नई दिल्ली में रह रहे हैं। नवगीत संग्रह 'बना रह ज़ख़्म तू ताज़ा' प्रकाशित। वे कुशल रंगकर्मी और अभिनेता भी हैं।

ईमेल - subhash.vasishtha@gmail.com

नवगीत

-सुभाष वसिष्ठ

1. धूप की ग़ज़ल

शुरू हुई
दिन की हलचल
गये सभी
लोहे में ढल

देह दृष्टि लिपट गयी
ताज़े अख़बारों से
शब्द झुण्ड निकल पड़े
खुलते बाज़ारों से

गुनता मन
धूप की ग़ज़ल

एक उम्र और घटी
तयशुदा सवालों की
बाँझ हुईं सीपियाँ
टीसते उजालों की

चौराहा, माथे पर बल !

2. ज़हरीला परिवेश

लाएँ क्या गीतों में ढूँढकर नया ?
ज़हरीला पूरा परिवेश हो गया !

चिकने-चुपड़े से कुछ शब्दों में
अँकुरायें तिरस्कार बीज
सार्वभौम सत्य का बखान करें
जिन्हें नहीं झूठ की तमीज़
धुएँ की हवाओं में,कौन,कब,जिया !

कहने को सतरंगी चादर है
पर,भीतर बहु पानीहीन
आसमान छू लेने को तत्पर
बिन देखे पाँव की ज़मीन
प्रतिभा के हक़ में क्या सिर्फ़ मर्सिया ?

3. फँस गया मन

फँस गया मन सभ्यता के जंगलीपन बीच
पर्त ऊपर पर्त की
आवाज़ का चढ़ना
स्वयं दिपने को
लचीला व्याकरण गढ़ना
बाँध लेना रूढ़ितोड़क ज़ंगमय ताबीज़

आ गयी संवेदना
उस बिन्दु पर चल के
बस, कथा के रह गये हैं
पत्र पीपल के
मूल्य सारे ज़िन्दगी के संग्रहालय चीज़

हर तरफ़ से रीतने की
प्रक्रिया उभरी
रोशनी के नाम लिख कर
सिसकती ढिबरी
प्रश्न हो कर रह गयी, फिर उत्तरी तजवीज़

4. यों अपने हाथ लगी

यों अपने हाथ लगी सिर्फ़
महकते उजालों की शाम
पर, न कभी लग सकते हैं
किरनों पर पत्थरी विराम

रास्ते बियाबां का स्वर साधे
वहशी रचनाओं में रीत गये
कुछ पूरे कुछ आधे
पालें क्यों ख़तरनाक सपने
रेतीले होंठों पर
जीवन का ले ले कर नाम ?

अन्धापन चौतरफ़ा खड़ा है
युवा, गठे, सुलगते अलावों का
तार-तार उधड़ा है

चौराहा संस्कृति में अग्नि बिन्दु
साँचायित देह लिये
और नहीं होंगे बदनाम !

5. दिवस ढला

दिवस ढला, उठ चल दीं
थकी-थकी संज्ञाएँ
सरका कर एक ओर काम
टूटे लो
दिन के आयाम

पीली रक्तिम चादर
स्याही में डूबने लगी
वृत्ति राग
दिन भर के नियमों से ऊबने लगी

बिन चेहरों की भीड़ों
चमकी क्या दो आँखें
चिहुँक उठे वासन्ती धाम

अर्थहीन-अर्थवान बैठक तब

हँसी की हुई
कॉफी पर बहसों में गयी कहीं
घड़ी की सुई

प्रश्नों में छिपे देख
अधबूझे उत्तर को
लहराये घर के आराम ।

6. पंख का नुचना

दूर तक फैले खुले आकाश में
फिर कबूतर झेलता है
पंख का नुचना!

एक तिर्यक रेख का
उष्मित अतल को
तर्क जुट हो काटना
स्वयं दीपित दूसरी का
छत्र नीला
चिंदियों में बाँटना

ताकती हैं फटी आँखें
ठगी कोकिल माथ अंकित
भाग्य का पुछना!

झील की गहराइयों को
बाज़-पंजों का
निरन्तर ताकना
सहमते खरगोश का
आवाज़ से भी
प्राण लेकर भागना

चीखते टुकड़े हवा के
शून्य की ऊँचाइयों तक
सागरों कुछ ना!

7. अग्नि-भर बाती

हर परिस्थिति में रहे यह उम्र
सच गाती
टूट कर भी सही को
लिखता रहूँ पाती

मैं नहीं हूँ
बड़े नामों के चरण का रँग महावर
या कि ज़िंदा लाश को
ढोती हुई लच भीरु काँवर

या कि हमदम छोड़
उगते सूर्य का साथी

चौंधियाती रोशनी के पार
लिजलिज सी गलाज़त
मुस्करा कर श्वेत मन को
ज़बह करने की इजाज़त

है सभी को साफ़ उत्तर --
“अग्नि-भर बाती” !

-सुभाष वसिष्ठ

सुधा ओम ढींगरा

'विभोम-स्वर'त्रैमासिक पत्रिका की संपादक और ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन की उपाध्यक्ष/सचिव सुधा ओम ढींगरा उपन्यासकार, कहानीकार, कवि, और पत्रकार हैं। उपन्यास, कहानी, कविता, निबंध संग्रह, आलोचना ग्रंथ, शोध ग्रंथ सहित 28 पुस्तकें प्रकाशित। 12 संपादित पुस्तकें प्रकाशित। 'कौन सी ज़मीन अपनी' पर लघु फिल्म बन चुकी है। कई प्रतिष्ठित संस्थाओं से सम्मानित/पुरस्कृत।

ईमेल - sudhadrishti@gmail.com

कॉस्मिक की कस्टडी

-सुधा ओम ढींगरा

"मैं गोद में लेकर उसे दूध पिलाती। मैंने उसकी पोटियाँ साफ़ कीं। रात को साथ सुलाया। वह आधी रात को मेरी छाती के साथ लग जाता था। माँ को मिस कर रहा था। मैंने दो-दो नौकरियाँ करके ग्रेग का भी ध्यान रखा ताकि यह अपनी मंज़िल पर पहुँच जाए और कॉस्मिक को भी पाला..."

इस केस ने मुझे चौंका दिया, जब मिसेज़ रॉबर्ट ने बोलना शुरू किया-

'सर कॉस्मिक एक दिन का था; जब मेरी गोद में आया था। मैंने कॉस्मिक को पाला है। उम्र के इस दौर में मैं उसे अपने पास रखना चाहती हूँ। मेरा बेटा ग्रेग इसके लिए मान नहीं रहा।

"यह सच है कि मैंने एक दिन के कॉस्मिक को मॉम की गोद में डाला था। कॉस्मिक एक दिन का था, जब इसकी माँ की डेथ हो गई। उस समय कॉस्मिक को माँ के प्यार और देख-भाल की ज़रूरत थी। इसका मलतब यह तो नहीं हुआ कि कॉस्मिक मॉम का हो गया। सर कॉस्मिक मेरा है, मेरा ही रहेगा। मॉम का इस पर कोई अधिकार नहीं। "ग्रेग ने सिर झटकते हुए बड़े गुस्से से कहा।

मिसेज़ रॉबर्ट ने ग्रेग की ओर देखा और उनकी आँखों में पानी की लकीर खींच गई। मिसेज़ रॉबर्ट का चेहरा बेहद उदास हो गया। इस केस की ज्यों-ज्यों परतें खुलती गईं, मैं हैरान होता गया। कई बार सोचता हूँ कि कुदरत ने मुझे क्या-क्या दिखलाना है और किन-किन अनुभवों से गुज़ारना है, जो मैं इस पेशे में आया।

हालाँकि यह पेशा मैंने चुना है, किसी ने मुझ पर थोपा नहीं। सच्चाई तो यह है कि इसी पेशे को अपनाने के लिए मैं बहुत कुछ पीछे छोड़ आया। खुली आँखों ने एक सपना देख लिया था और उस सपने ने अपने पर फैला लिए, बस उस सपने के साथ मैं भी उड़ जाना चाहता था। मैं उड़ ही आया....दूर दराज़। इतनी दूर निकल आया कि अपने, बहुत अपने भी पीछे छूट गए। कई बार पीछे छूट गए अपनों के प्रति मन कचोटता है और अपने में उलझ कर रह जाता हूँ। दिल और दिमाग में ऐसा द्वंद्व छिड़ता है कि उसे शांत करना मुश्किल हो जाता है। अक्सर यह द्वंद्व मेरे काम पर भी हावी हो जाता है। केस के आरंभ में ही मुझे पता चल जाता है कि कुछ टूटेगा या छूटेगा। बस बेचैन हो जाता हूँ। इस केस में भी कुछ टूटेगा, महसूस कर व्याकुल हो गया हूँ।

मिसेज़ रॉबर्ट और ग्रेग अपना-अपना पक्ष बता रहे हैं...

'सर्दियों के दिन थे, मैं भूल नहीं सकती 10 दिसम्बर का वह दिन, जब कॉस्मिक को ग्रेग ने मेरी गोद में डाला था। वह ठंड से काँप रहा था। मैंने उसे कम्बल में लपेटा था। वह भूखा था। स्टोर से जाकर मैं उसके लिए दूध की बोतल और पॉटी ट्रेनिंग के लिए सामान लेकर आई थी।'

"मॉम, आप ही वह सब ला सकती थीं, मुझे तब इस सबकी नॉलेज नहीं थी।"

"मैं गोद में लेकर उसे दूध पिलाती।

"पूर्व की हवाओं ने वर्ण भेद के ऐसे पत्ते उड़ाए, मैं जज बनते-बनते रह गया। पश्चिम से आई रौशनी ने आँखों में एक सपना चमका दिया, जिसे पूरा करते हुए ऐसी हक़ीक़त का सामना करना पड़ा, जिसने भीतर तक हिला दिया। पश्चिम की रौशनी रंग भेद और नस्ल भेद के अँधेरे को अभी तक मिटा नहीं पाई है...यह हकीकत जब समझ में आई तो बहुत देर हो चुकी थी।। "

मैंने उसकी पोटियाँ साफ़ कीं। रात को साथ सुलाया। वह आधी रात को मेरी छाती के साथ लग जाता था। माँ को मिस कर रहा था। मैंने दो-दो नौकरियाँ करके ग्रेग का भी ध्यान रखा ताकि यह अपनी मंज़िल पर पहुँच जाए और कॉस्मिक को भी पाला।"

मिसेज़ रॉबर्ट अतीत में डूबी अपनी धुन में बोल रही हैं।

ग्रेग शांत हो गया लगता है चुपचाप सिर झुकाए बैठा सुन रहा है।

यह सब एक कॉन्फ्रेंस रूम में हो रहा है। जिसके बीचों बीच एक बड़ी अंडाकार टेबल पड़ी है और उस टेबल के इर्द-गिर्द कुछ कुर्सियाँ पड़ी हैं। मैं उसी टेबल के एक तरफ बैठा हूँ और

सामने पड़ी दो कुर्सियों पर मिसेज़ रॉबर्ट और ग्रेग बैठे हैं। कमरे के एक कोने में कॉफ़ी, चाय, पानी, ठंडा और गर्म नाश्ता पड़ा है। कई तरह के ठंडे पेय पदार्थ भी हैं।

मैंने उस टेबल की ओर इशारा करके कहा- 'कुछ लेंगे।'

दोनों ने सिर हिला कर मना कर दिया।

'ग्रेग तुमने कहाँ तक पढ़ाई की है ?' मैंने पूछा।

'सर मैंने नॉर्थ कैरोलाइना यूनिवर्सिटी से कंप्यूटर साइंस में मास्टर्ज़ किया है।'

'कहाँ जॉब करते हो?' मैं केस को अच्छी तरह समझाना चाहता हूँ, इसलिए पूछा।

'शार्लेट में इन्वेस्टमेंट कंपनी जेपी मॉर्गन के कंप्यूटर डिपार्टमेंट का हेड हूँ।'

इसका मतलब ज़िम्मेदार पद पर है। दिखने में लापरवाह लगता है। मैंने मन ही मन सोचा।

अरे मैंने अपनी बात शुरू कर दी और आपको बताया ही नहीं कि मेरा नाम सुधीर पटनी है और मैं फैमिली कोर्ट्स का डिस्ट्रिक्ट एडवाइज़र अटर्नी हूँ। कोर्ट में केस भेजने से पहले मैं दोनों पक्षों को बैठा कर केस को सुलझाने यानी दोनों पक्षों का समझौता करवाने की कोशिश करता हूँ, अगर दोनों पक्ष आमने-सामने बैठने को मान जाएँ। तभी समझौता संभव होता है। कभी-कभी आवेदनकर्ता के मन में दूसरे पक्ष के प्रति बहुत रोष, आक्रोश और गुस्सा होता है। वह दूसरी पार्टी के साथ आमने -सामने बैठने के लिए तैयार ही नहीं होता तो दोनों पक्षों को अलग-अलग कमरों में बैठा कर भी बात की जाती है। इस केस में दोनों पक्ष आमने-सामने बैठने को मान गए हैं और अपना-अपना पक्ष बता रहे हैं। मेरा काम है उनके पक्ष सुनना और अंत में निर्णय लेना।

पूर्व की हवाओं ने वर्ण भेद के ऐसे पत्ते उड़ाए, मैं जज बनते-बनते रह गया। पश्चिम से आई रौशनी ने आँखों में एक सपना चमका दिया, जिसे पूरा करते हुए ऐसी हक़ीक़त का सामना करना पड़ा, जिसने भीतर तक हिला दिया। पश्चिम की रौशनी रंग भेद और नस्ल भेद के अँधेरे को अभी तक मिटा नहीं पाई है...यह हकीकत जब समझ में आई तो बहुत देर हो चुकी थी। मैंने ऐसा सपना देख लिया था, जिसे पूरा करना बेहद कठिन था। सच्चाई को स्वीकारा तो रास्ता आसान हो गया अंततः जज की बजाय मैं फैमिली कोर्ट्स का डिस्ट्रिक्ट एडवाइज़र अटर्नी बन गया।

मैं देख रहा हूँ आप मेरी बात सुनते हुए कुछ सोचने लगे हैं ! अच्छा आप कॉस्मिक के बारे में सोच रहे हैं.....

मुझे भी पता नहीं कॉस्मिक का माजरा क्या है? आपके साथ-साथ मैं भी जान पाऊँगा। मैं सिर्फ इतना जानता हूँ कि मिसेज़ रॉबर्ट अपने बेटे ग्रेग से कॉस्मिक की कस्टडी चाहती हैं जो उनका बेटा उन्हें देना नहीं चाहता। समय की पाबन्दी है...चलिए केस को सुनते हैं...

'मिसेज़ रॉबर्ट आप क्या काम करती हैं?'

'मैं दो डिपार्टमेंट स्टोरों पर काम करती थी। एक से गुज़ारा नहीं होता था। ग्रेग पढ़ रहा था। सर मैं सिर्फ हाई स्कूल पास हूँ। पति की जब अकस्मात् मृत्यु हुई तो मैं बौखला गई। पढ़ी-लिखी होती तो मुझे इतनी मेहनत नहीं करनी पड़ती, जितनी मैंने की। मैं ग्रेग को खूब पढ़ाना चाहती थी, इसलिए मैंने ग्रेग को बाहर काम नहीं करने दिया। ग्रेग का जन्म मेरी बढ़ती उम्र में हुआ था, अब मैं रिटायर्ड हूँ। अकेली भी हो गई हूँ। ग्रेग शार्लेट शहर में रहता है और मैं रॉली शहर में रहती हूँ। बूढ़ी हो रही हूँ। मुझे कॉस्मिक का साथ चाहिए।'

'मॉम अकेली तो आप तब भी थी, जब मैं कॉलेज में था।' ग्रेग ने हल्का सा चेहरा ऊपर उठाते हुए कहा।

'हाँ तब कॉस्मिक मेरे साथ था। तुम तो उसका ध्यान रख नहीं पाते थे। तब मुझे अकेलापन नहीं लगता था और हर वीकेंड तुम मुझे और कॉस्मिक को मिलने आते थे।'

'मिसेज़ रॉबर्ट आप ग्रेग के पास जा सकती हैं कॉस्मिक और ग्रेग को मिलने। शार्लेट तीन ही घण्टे की दूरी पर है। रेलगाड़ी वहाँ जाती है और बस भी।' मैंने उन्हें सुझाव देते हुए कहा।

'जो बेटा मेरा फ़ोन नहीं उठाता, छोड़े गए संदेशों का उत्तर नहीं देता यहाँ तक कि एस एम एस का भी उत्तर नहीं देता, उसके घर मैं कैसे जाऊँ !'

'आप माँ हैं, वहाँ जाने का हक़ है आपका।' बीस वर्षों से इस देश में रह रहा हूँ, अपने पेशे के दायरे को भी समझता हूँ, पर देसी मन को कौन समझाए! रोकता रहता हूँ , फिर भी हर केस में कुछ न कुछ कह देता हूँ। लो... फिर बोल गया। यह सुनते ही मिसेज़ रॉबर्ट की रुलाई छूट गई...

मेरे उठने से पहले ही ग्रेग उठा और थोड़ी दूर पड़ी मेज़ के पास चला गया, जहाँ पानी, कॉफ़ी और कुछ हल्का नाश्ता पड़ा है। उसने पानी का गिलास भरा और अपनी माँ के पास ले आया। पहले उसे बाँहों में भरा, माँ के आँसू पोंछे और फिर उसे पानी पिलाया। दृश्य देख कर मैं भावुक हो गया हूँ। दिल गवाही दे रहा है कि कुछ क्षण पहले जो मैं महसूस कर रहा था, वैसा कुछ नहीं होने वाला। दोनों की समस्या विशेष गम्भीर नहीं, कोर्ट तक जाने की नौबत नहीं आएगी। बस दोनों में संवाद लुप्त हो गया है, उसे जगाना है वरन् एक दूसरे के प्रति भावनाओं और संवेगों में कमी नहीं आई है।

'मॉम मैं बहुत व्यस्त रहता हूँ, इसलिए उत्तर नहीं दे पाता। कितनी बार कहा है आपको, अपने लिए कोई साथी ढूँढ़ लें। आपका अकेलापन कम हो जाएगा। न कॉस्मिक की ज़रूरत पड़ेगी, न मेरी।' ग्रेग ने प्यार से माँ के सिर पर हाथ फेरा और माथा चूम कर बड़े नरम लहजे में माँ से कहा।

मैं हैरान हो रहा हूँ.... ग्रेग जब थोड़ी देर पहले यहाँ आया था और मेरे सामने बैठने तक बहुत गुस्से में था। मिसेज़ रॉबर्ट उससे पाँच

"मैं तुम्हें कितनी बार कह चुकी हूँ, मुझे कोई पुरुष साथी नहीं चाहिए। तुम्हारे डैड और मैं बचपन के दोस्त थे, बचपन का दोस्त जब जीवन साथी बनता है, तो वह अपने-आप में पूर्णता होती है। क्या हुआ अगर तुम्हारे डैड जिस्मानी तौर पर मेरे साथ नहीं, पर मेरे दिल और आत्मा में तो रॉबर्ट अभी भी बसते हैं। हमारा जितना भी साथ रहा, मैं भीतर तक तृप्त हूँ, संतुष्ट हूँ।"

मिनट देर से आई थीं। तब से वह माँ के प्रति गुस्सा और लापरवाही दिखा रहा था। माँ को रोते देख उसमें इतना परिवर्तन! इसका मतलब यह सब उसने ओढ़ा हुआ था.... पर क्यों?

'मैं तुम्हें कितनी बार कह चुकी हूँ, मुझे कोई पुरुष साथी नहीं चाहिए। तुम्हारे डैड और मैं बचपन के दोस्त थे, बचपन का दोस्त जब जीवन साथी बनता है, तो वह अपने-आप में पूर्णता होती है। क्या हुआ अगर तुम्हारे डैड जिस्मानी तौर पर मेरे साथ नहीं, पर मेरे दिल और आत्मा में तो रॉबर्ट अभी भी बसते हैं। हमारा जितना भी साथ रहा, मैं भीतर तक तृप्त हूँ, संतुष्ट हूँ।'

अब समझ में आया ग्रेग की माँ को अपने नाम से पुकारा जाना क्यों पसंद नहीं! वे मिसेज़ रॉबर्ट ही कहलवाना चाहती हैं। हालाँकि उनका नाम मैरी है।

'ठीक है मॉम।' ग्रेग थोड़ा मुस्कुराया और माँ से अलग होकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया। उसका गुस्सा माँ के आँसुओं के साथ बह गया था।

'सर आपने कहा कि ग्रेग के घर जाने का माँ का हक़ बनता है। मैं उसी हक़ से इसके घर गई थी। जाने से पहले भी इसे एस एम एस किया था, इसने कोई उत्तर नहीं दिया। वहाँ जाकर घर के सामने खड़े होकर भी इसे सन्देश भेजा था। न यह आया और न ही इसने उत्तर दिया।'

'माँ मैं कितनी बार कह चुका हूँ, मैंने वे मैसेज तब देखे जब आप वापिस रॉली लौट आई थीं, पर आपको मेरी बात पर यकीन नहीं होता। उन दिनों मैं बहुत व्यस्त रहता था।'

'तुम तो हर समय ही व्यस्त रहते हो। इसका मतलब यह तो नहीं कि तुम अपनी ज़िम्मेदारियों से मुँह मोड़ लो।'

ग्रेग ने फिर अपना सिर झुका लिया। वह कुछ बोला नहीं।

'काम में माँ तो कहीं खो गई है। हालाँकि तुम जानते हो तुम्हारे आलावा मेरा कोई नहीं। मेरी फ़िक्र करनी तो तुमने छोड़ दी है, मैं समझ गई हूँ। हमारी चर्च की सहेलियाँ और आस-पड़ोस के परिवार हैं मेरे दुःख-सुख के साझीदार। कॉस्मिक पर इतना अत्याचार क्यों?' मिसेज़ रॉबर्ट की आवाज़ में दर्द उतर आया था।

मिसेज़ रॉबर्ट की बात समाप्त करते ही ग्रेग एकदम भड़क गया-'मॉम आप मेरे पर गलत दोष लगा रही हैं। मैं कॉस्मिक का पूरा ख़याल रखता हूँ।'

'क्या ख़याल रखते हो ? जब मैं तुम्हारे घर गई थी, मैंने बाहर और कार में बैठकर ही पूरा दिन काटा था। तुम तो लौटे नहीं, मुझे यह भी पता नहीं कॉस्मिक कहाँ था?'

'आपको पता न होने से उसका शोषण हो गया? उस दिन मैं बहुत व्यस्त था। मैंने आपको कई बार बताया है।' ग्रेग गुस्से में बोला। लगता है ग्रेग को गुस्सा जल्दी आ जाता है और जल्दी चला भी जाता है।

'सर, अब मैं इसके सामने एक राज़ खोलना चाहती हूँ। मैं तीन बार इसके घर गई थी और तीनों बार ड्राइव करके गई थी। इसे कोई मैसेज नहीं भेजा था। इस उम्मीद के साथ कि शाम को जब यह घर आएगा तो मुझे बाहर बैठा देखकर खुश होगा। इसे सरप्राइज़ बहुत अच्छे लगते हैं। रॉली से शार्लेट जाने में तीन घंटे लगते हैं। इतना आसान भी नहीं है बार-बार जाना। पर मैं गई। मैं इसकी केयर करती हूँ, यह मेरा बेटा है। जब यह आधी रात तक नहीं लौटा, तो मैं वापिस रॉली आ गई। मैंने सारा-सारा दिन इसके घर के बाहर बैठ कर गुज़ारा। इसके पड़ोसी भी इस बात को जानते हैं। उन्होंने भी मुझे बताया कि ग्रेग कई बार रात-रात भर घर नहीं आता। आप खुद सोचिए, कहाँ रहता होगा और क्या हाल होता होगा कॉस्मिक का! कितना अकेला हो गया है मेरा कॉस्मिक!' मिसेज़ रॉबर्ट की आवाज़ भर्रा गई।

कुछ क्षण थम कर वे फिर बोलीं- 'अब भी यह कहेगा कि मैं इस पर गलत दोष लगा रही हूँ।'

इस बात पर ग्रेग विचलित हो गया और माथे पर आए पसीने को पोंछने लगा।

'सर, कॉस्मिक आठ साल का हो गया है। पिछले सात साल वह मेरे साथ रहा। एक वर्ष से वह ग्रेग के साथ है, जबसे इसकी नौकरी लगी है।' मिसेज़ रॉबर्ट ने ग्रेग की ओर देखते हुए कहा।

'ग्रेग यह कह कर कॉस्मिक को मुझ से ले गया कि कॉस्मिक इसका बेटा है, इसके साथ रहेगा।' मिसेज़ रॉबर्ट ने अपने दोनों हाथ मेज़ के साथ टिकाये हुए हैं और बस कहीं अपने में खोई हुई बोल रही हैं- 'डॉक्टर कहते हैं कि मैं निराशा में जा रही हूँ, अकेलापन और निराशा दूर करने के लिए मुझे किसी का साथ चाहिए।'

ग्रेग तड़प उठा- 'मॉम आपने मुझे बताया क्यों नहीं...।' वह बात पूरी नहीं कर पाया। भावनाओं के आवेग ने शायद चुप करा दिया। आँखें डबडबा रही हैं...

अब मिसेज़ रॉबर्ट सीधे ग्रेग को देख कर उसे कह रही हैं- 'अगर तुम मुझे कॉस्मिक दे देते हो तो सबसे बड़ा सहारा मुझे मिल जाएगा। कॉस्मिक बहुत समझदार और सुलझा हुआ है। हम दोनों एक दूसरे को समझते हैं। दोनों मिलकर एक-दूसरे का अकेलापन दूर कर लेंगे।'

ग्रेग की दोनों कोहनियाँ मेज़ पर टिकी हुई हैं और उसने अपने दोनों हाथों से एक मुट्ठी बना कर उस पर अपना सिर टिका लिया है। ऐसा लग रहा है जैसे वह कुछ भी सुन नहीं रहा, बस किन्हीं ख़यालों में खोया हुआ है...

मिसेज़ रॉबर्ट फिर ग्रेग की ओर मुख़ातिब होकर बोलीं- 'पता नहीं तुम्हारा अहम् क्यों आड़े आ रहा है। कॉस्मिक तुम्हारा बेटा है, तुम्हारा ही

रहेगा...मैंने तो आया की तरह पाला है, अब भी वैसे ही पालूँगी...।'

यह कहते-कहते मिसेज़ रॉबर्ट ने अपना सिर कुर्सी की पीठ के साथ टिका दिया, जैसे निढाल हो गई हों और आँखें बंद कर लीं और कमरे में उदास-सी ख़ामोशी छा गई। मिसेज़ रॉबर्ट के अंतिम शब्द मुझे विह्वल कर गए। मैं कुर्सी पर बैठ नहीं सका। ज्योंही मैं कुर्सी से उठा, ग्रेग भी अपनी कुर्सी से उठा और तेज़ी से बाहर चला गया। मैं कॉफ़ी बनाने के लिए नाश्ते की मेज़ की ओर बढ़ा ही हूँ , मिसेज़ रॉबर्ट के चेहरे पर नज़र पड़ गई। आँखों ने कई दरिया बहा दिए हैं... कुछ पलों तक कॉफ़ी की सुगंध कमरे की ख़ामोशी के साथ गलबहियाँ डाले रही।

मुझे अब ग्रेग के लौटने का इंतज़ार करना है। इंतज़ार करने के अतिरिक्त मेरे पास और कोई विकल्प नहीं है। कम से कम दस मिनट तक मुझे उसका इंतज़ार करना है, फिर कोई कार्यवाही करूँगा। मैं कॉफ़ी की चुस्कियाँ लेने लगा...पाँच मिनट के भीतर ग्रेग ने कमरे में प्रवेश किया। उसके साथ एक खूबसूरत लड़की है और ग्रेग ने एक कुत्ते की लीश पकड़ी हुई है, जिससे वह बँधा है। मैं बौखला गया। अरे यह क्या?...मेरा माथा ठनका! एकदम से उनकी फ़ाइल खोलकर देखने लगा हूँ। बस यही लिखा है, कॉस्मिक की कस्टडी मिसेज़ रॉबर्ट को चाहिए। क्या कॉस्मिक इनका कुत्ता है? मैं तो कुछ और ही समझ रहा था। मेरे कुलीग ने एक बार मुझे बताया था कि यहाँ के लोग कुत्तों के लिए बहुत संवेदनशील होते हैं। बच्चों की तरह उन्हें मानते और प्यार देते हैं। अगर कभी किसी कुत्ते का केस आए तो बेहद सावधानी बरतना। मुझे कुलीग की बात याद आ गई...। मध्यम कद का, भूरे और सफेद रंग का खूबसूरत बीगल नस्ल का कुत्ता मिसेज़ रॉबर्ट को देख कर लीश को खींच कर छूटने की कोशिश करने लगा।

ग्रेग ने उसे अपनी मॉम के पास ले जाते हुए कहा- 'मॉम सँभालो अपने छोटे बेटे कॉस्मिक को...।'

कॉस्मिक मिसेज़ राबर्ट के क़दमों पर लोटने लगा। मिसेज़ रॉबर्ट उसकी छुअन से ही सचेत हो गईं...

मॉम यह डनीस है मेरी गर्ल फ्रेंड! मैं अपनी फ़ाइल उठा कर एक सुखद दृश्य को देखता हुआ कमरे से बाहर आ गया हूँ । पहली बार मेरे पास आए किसी केस का सुखद अंत हुआ।कुछ नहीं टूटा, कुछ नहीं छूटा। बेहद सकून मिला है!

-सुधा ओम ढींगरा

आलोक यादव

फर्रुखाबाद जनपद (उत्तर प्रदेश) में जन्मे और वर्तमान में भारत सरकार के श्रम और रोजगार मंत्रालय के अंतर्गत ई पी एफ ओ विभाग में क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त पद (दिल्ली) पर कार्यरत आलोक यादव कहानी, कविता, ग़ज़ल, लेख आदि विधा में सृजन कर रहे हैं। दो ग़ज़ल संग्रह 'उसी के नाम' और 'क़लम ज़िंदा रहेगा' प्रकाशित। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं सहित आकाशवाणी और दूरदर्शन पर भी ग़ज़लें प्रकाशित/प्रसारित।

ईमेल - alokyadav1@rediffmail.com

ग़ज़लें

-आलोक यादव

1.

तेरी तस्वीर जो हँसती हुई है
हमारी मेज पे रक्खी हुई है

नहीं पहले कभी ऐसे न थे तुम
मुझे इस बार हैरानी हुई है

मेरे घर में दरारों से न झाँको
यहाँ बीती सदी सोई हुई है

अभी तक पिछले मौसम साथ में हैं
अभी पहलू में तू बैठी हुई है

न जाने कब तलक सूरज ढलेगा
बड़ी मुश्किल ये दोपहरी हुई है

ये लगता है तेरी यादों की तितली
यहाँ हर फूल पर बैठी हुई है

ख़ुशी की खोज में निकले हैं जब भी
उदासी और भी गहरी हुई है

2.

रहगुज़र ज़ख़्मी हर इक आहट उदास
शहर सूने हो गए मरघट उदास

देखकर फितरत नए इंसान की
अब दु:शासन सा भी है लंपट उदास

उसकी यादें उसकी बातें उसका ज़िक्र
सुन रही है घर की हर चौखट उदास

ज़िंदगी मेरी है इक बासी गुलाब
ख़ुशबुओं का हो गया जमघट उदास

चाँद जब आँखों से ओझल हो गया
छत से उतरी चाँदनी नटखट उदास

भाई बहनों से छुपाया था जिन्हें
हैं वो सारी टॉफियाँ कमपट उदास

यूँ तो अच्छा है कि पहुँचा नल से जल
गाँव के हैं पर सभी पनघट उदास

धूल उड़ाती आख़िरी बस भी गई
हो गए बस्ती के सारे पट उदास

जा चुका बीमार बिस्तर छोड़ कर
रह गई चादर की हर सलवट उदास

रेज़ा रेज़ा हो गए 'आलोक' हम
फिर भी जीवन के हैं सारे तट उदास

3.

देखें पहले बोले कौन
घर की कुंडी खोले कौन

यादों के सन्नाटे में
आया हौले हौले कौन

इनकी भी मजबूरी है
तस्वीरों से बोले कौन
सूनी सूनी सड़कों पर
आवारा सा डोले कौन

मौन हुए कंगन उनके
कान में मिश्री घोले कौन

वक्त को दीमक चाट गई
दीवारों से बोले कौन

सहमी सहमी बैठी हैं
यादों के पर खोले कौन

चन्दा पूछे सूरज से
भरता तुझमें शोले कौन

जिस्मों के इस जंगल में
अपनी रूह टटोले कौन

4.

इक ज़रा सी चाह में जिस रोज़ बिक जाता हूँ मैं
आईने के सामने उस दिन नहीं आता हूँ मैं

रंजो - ग़म उससे छुपाता हूँ मैं अपने लाख पर
पढ़ ही लेता है वो चेहरा फिर भी झुठलाता हूँ मैं

क़र्ज़ क्या लाया मैं खुशियाँ ज़िन्दगी से एक दिन
रोज़ करती है तक़ाज़ा और झुँझलाता हूँ मैं

हौसला तो देखिये मेरा ग़ज़ल की खोज में
अपने ही सीने में खंजर सा उत्तर जाता हूँ मैं

दे सज़ाए मौत या फिर बख़्श दे तू ज़िन्दगी
कश्मकश से यार तेरी सख़्त घबराता हूँ मैं

मौन वो पढ़ता नहीं और शब्द भी सुनता नहीं
जो भी कहना चाहता हूँ कह नहीं पता हूँ मैं

ख़्वाब सच करने चला था गाँव से मैं शहर को
नींद भी खोकर यहाँ 'आलोक' पछताता हूँ मैं

-आलोक यादव

प्रगति टिपणीस

लखनऊ, उत्तर प्रदेश में जन्म। पिछले तीन दशकों से मास्को, रूस में निवास। रूसी भाषा से हिंदी और अंग्रेज़ी में अनुवाद कार्य। पाँच सदस्यीय दल के साथ हिंदी-रूसी मुहावरा कोश और हिंदी मुहावरा कोश पर कार्यरत। मॉस्को की भारतीय संस्था 'हिंदुस्तानी समाज, रूस' की सांस्कृतिक सचिव हैं। अनन्य 'रूस' पत्रिका की संपादक।

ईमेल - pragatitipnis@gmail.com

'हिन्दी भाषा, रादस्त नाशा' - हमारी ख़ुशी का कारण हिन्दी भाषा है।

-प्रगति टिपणीस

"चौदह साल की उम्र में उस के लिए अहिंसा की अवधारणा बिलकुल नयी थी। वह उपलब्ध किताबों के माध्यम से इस विषय के बारे में और जानने की कोशिश करने लगती है और सोलह साल की उम्र की होते-होते उसे पूरे विश्वास के साथ यह मालूम होता है कि उसे भारत की धर्म-परंपरा और विशेष तौर से जैन धर्म का गहन अध्ययन करना है।.."

मॉस्को के केंद्र में, क्रेमलिन से एक किलोमीटर की दूरी पर, एक भव्य इमारत 'प्राच्य अध्ययन संस्थान' की है। इस संस्थान में सभी प्राचीन सभ्यताओं जैसे भारत, मिस्र, अरब, बेबीलोन (बाबिल), चीन, जापान आदि का अध्ययन होता है। भारत के विभिन्न धर्मों तथा दर्शन शास्त्र पर भी इस संस्थान के शोधकर्मियों द्वारा बहुत काम हुआ है। हमारा (डॉ इंद्रजीत सिंह और प्रगति टिपणीस) वहाँ जाना भी इन विषयों पर जानकारी हासिल करने के सिलसिले में हुआ। इस संस्थान की मुख्य भारतविद नतालिया झिलिज़नोवा हैं। नतालिया भारत और उसकी संस्कृति में गहरी रुचि रखती हैं, ये कई बार भारत की यात्रा पर गई हैं और इन्होंने लगभग पूरे भारत की यात्रा अकेले की है। संस्कृत, हिन्दी, पाली, अपभ्रंश के साथ-साथ ये अंग्रेजी भी जानती हैं। उनका कहना है कि भारत में लोगों के साथ संपर्क बनाने में उन्हें कभी किसी परेशानी का सामना नहीं करना पड़ा। नतालिया के भारतविद बनने की कहानी उनके बचपन की एक घटना से जुड़ी है।

चलिए, उनकी कहानी हम उनके चौदहवें साल से शुरू करते हैं। पिछली सदी के अस्सी के दशक में विश्व शीत-युद्ध की चपेट में था। सोवियत संघ को लौह आवरण से ढका देश कहा जाता था। वस्तुओं की उपलब्धता आदि के बारे में यह सच भी था। यहाँ पश्चिम के देशों का सामान तब नहीं बिका करता था। परन्तु यहाँ के लोग पश्चिमी देशों के साथ-साथ समस्त विश्व की कला, साहित्य, इतिहास में बेहद रुचि रखते थे और स्कूलों तथा शिक्षण-संस्थानों में उनके बारे में पढ़ाया भी जाता था। उसी दशक में स्कूल की एक छात्रा यानी नतालिया इतिहास के किसी पाठ में जैन धर्म के बारे में पढ़ती है और उसके मूल सिद्धांत अहिंसा से बहुत प्रभावित हो जाती है। चौदह साल की उम्र में उस के लिए अहिंसा की अवधारणा बिलकुल नयी थी। वह उपलब्ध किताबों के माध्यम से इस विषय के बारे में और जानने की कोशिश करने लगती है और सोलह साल की अवस्था होते-होते पूरे विश्वास के साथ यह सुनिश्चित कर लेती है कि उसे भारत की धर्म-परंपरा और विशेष तौर से जैन धर्म का गहन अध्ययन करना है। वह यह भी समझती है कि मूल ग्रंथों को पढ़ने और उनकी गहराई तक जाने के लिए उसे संस्कृत भाषा सीखनी होगी। चूँकि संस्कृत प्राचीन भारतीय संस्कृति की गहराई में उतरने की पहली सीढ़ी होती है, अतः वह उच्च शिक्षा के लिए मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र संकाय के प्राच्य विभाग में दाख़िला लेती है और परास्नातक के बाद वहीं से पी.एच.डी. भी करती है। इस विभाग में इसकी संस्कृत गुरु प्रोफ़ेसर वेरताग्रादवा थीं।

"लेखकों में उनके पसन्दीदा खुशवंत सिंह हैं, उपन्यास 'दिल्ली' पढ़ने के बाद वे उनकी मुरीद हो गईं। उन्हें अमिताव घोष, किरण देसाई की किताबें पसंद हैं। पुराने साहित्यकारों में प्रेमचंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय, कृष्णचन्द्र आदि को भी इन्होंने पढ़ा है, पर आजकल ये आधुनिक भारतीय साहित्य पढ़ना पसंद करती हैं।..."

नतालिया, रूस जैसे देश मे, जहाँ भोजन अधिकांश माँसाहारी होता है, सोलह साल की अवस्था से शाकाहारी हो जाती हैं; यह निश्चित रूप से उनके और उनके परिजनों के लिए एक बड़ी चुनौती रही होगी। आज तो रूस में खाद्य-पदार्थों की कोई कमी नहीं है और शाकाहारी पदार्थ पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं; लेकिन सोवियत संघ में फल और सब्ज़ियाँ सिर्फ गर्मी के तीन-चार महीने ही मिला करती थीं। उन दिनों में और उतनी कम उम्र में नतालिया कैसे शाकाहारी बनीं और फिर रह पाईं, यह वाक़ई में एक पहेली है। नतालिया ने कभी भी धूम्रपान या मदिरापान नहीं किया है, जबकि रूस में नौजवान यह सब बहुत कम अवस्था में शुरू कर देते हैं। जैन धर्म से प्रभावित होने के कारण ही उन्होंने ऐसा आचार-व्यवहार अपनाया और आज तक उसका पालन कर रही हैं।

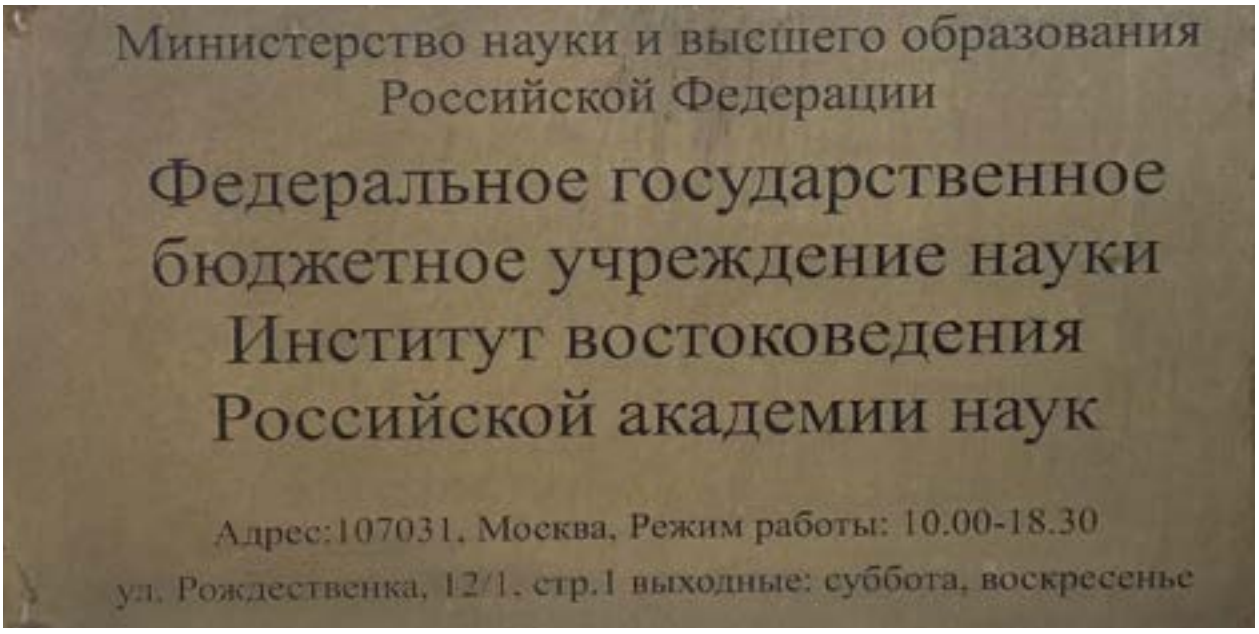

संस्थान की नाम-पट्टी रूसी में

बातों-बातों में यह पूछने पर कि नतालिया को भारत कैसा लगता है, उन्होंने कहा कि बिलकुल अपना लगता है। अपने अध्ययन के विषयों में तो उन्हें रुचि है ही, उन्हें भारत के लोगों की सादगी व खुलापन बहुत पसंद हैं और यही वे कारण हैं कि उन्होंने अपने प्रयत्नों से बोलचाल की इतनी अच्छी हिन्दी सीख ली है। विश्वविद्यालय में उनकी मुख्य भाषाएँ संस्कृत और प्राकृत थीं; लेकिन उन्होंने हिन्दी के सम्बन्ध में दो पंक्तियाँ रूसी में ये कहीं - "हिन्दी भाषा, रादस्त नाशा।" इनका अर्थ है - हमारी ख़ुशी का कारण 'हिन्दी भाषा' है। उनका व्यवहार बराबर उनकी बातों की पुष्टि किये जा रहा था। हम जब संस्थान की भव्य इमारत के भूलभुलैया-नुमा गलियारों से नतालिया के कमरे की तरफ उनके साथ जा रहे थे तो नतालिया के विश्वासपूर्ण क़दमों की गूँज और खनकती आवाज़ सुनकर उनकी एक सहकर्मी समझ गईं कि वे आ रही हैं और उन्हें लगा था कि नतालिया फ़ोन पर किसी के साथ गर्मजोशी से बात कर रही हैं। हमें देखकर उस सहकर्मी ने नतालिया से कहा, अरे! आपके साथ तो मेहमान हैं। नतालिया ने जवाब में कहा - "ये मेहमान नहीं, मेरे अपने लोग हैं।"

जैन धर्म के कुछ अनन्य पहलुओं को रूसी पाठकों के लिए उजागर करती नतालिया की अगली पुस्तक लगभग तैयार है और आज वरिष्ठ जानकारों की एक कमेटी में उस पर चर्चा होनी थी। कमेटी द्वारा इंगित किये जाने वाले सुधार आदि करने के बाद वह किताब प्रकाशन के लिए जाएगी। इतना महत्त्वपूर्ण और निर्णायक दिन होने के बावजूद भी नतालिया ने मेरे अनुरोध पर आज मिलने का समय दिया था और कमेटी चर्चा के पंद्रह मिनट पहले तक वे शांतिपूर्ण मनोभाव से हमारे साथ बात कर रही थीं। यह शायद इस बात का सूचक है कि उनको ख़ुद पर और अपने काम की गुणवत्ता पर पूरा विश्वास है।

नतालिया ने किताबों की दुनिया से

नतालिया झिलिज़नोवा और डॉ इंद्रजीत सिंह

बाहर निकलकर भी भारत और उसके लोगों को समझा है। देश भ्रमण के दौरान वे अलग-अलग मंदिरों, गुरुद्वारों, सार्वजानिक स्थलों पर जाती हैं और वहाँ पर आम भारतीय की तरह बैठकर कीर्तन सुनती हैं, चल रही गतिविधियों का मौन रूप से आनंद लेती हैं। उनके इस आनंद में लोगों की भावनाओं, सोच आदि की मूक रूप से मिलती तरंगों का भी बड़ा हाथ होता है। अपनी हर यात्रा के दौरान वे चाँदनी चौक के शीशगंज गुरुद्वारा अवश्य जाती हैं, वहाँ बैठकर कीर्तन सुनना उन्हें बहुत पसंद है। वे हिन्दी फ़िल्में भी पसंद करती हैं, उनका जुड़ाव भारत से 'इल्मी' के साथ-साथ 'फिल्मी' भी है। शाहरुख़ ख़ान उन्हें बहुत पसंद हैं; पर वे अमिताभ बच्चन की शख्सियत से बेहद मुतासिर हैं। अजय देवगन की अदाकारी उन्हें भाती है। लेखकों में उनके पसन्दीदा खुशवंत सिंह हैं, उपन्यास 'दिल्ली' पढ़ने के बाद वे उनकी मुरीद हो गईं। उन्हें अमिताव घोष, किरण देसाई की किताबें पसंद हैं। पुराने साहित्यकारों में प्रेमचंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय, कृष्णचन्द्र आदि को भी इन्होंने पढ़ा है, पर आजकल ये आधुनिक भारतीय साहित्य पढ़ना पसंद करती हैं। यही बात हिन्दी फिल्मों के सन्दर्भ में उनके लिए कही जा सकती है, पुरानी की अपेक्षा नई फ़िल्में और नए टीवी सीरियल देखना पसंद करती हैं। उनका कहना है कि समकालीन कला और साहित्य से ही मौजूदा समाज की नब्ज़ और उसके लोगों को बेहतर समझा जा सकता है। उनसे भाषा के नए प्रयोगों के बारे में भी पता चलता है।

नतालिया ने भारत को समझने का समग्र प्रयत्न किया है। रेलगाड़ी में बैठकर सफ़र करके देश और जन को जानने का नुस्ख़ा नया नहीं है और उसके नतीजों के बारे में भी सब जानते हैं। यह सफ़र शहरों के दरमियान आने वाले हमारे क़स्बों और गाँवों के जीवन की झलक भी दिखा जाता है।

धर्म और दर्शन सम्बन्धी अपनी उत्कण्ठा

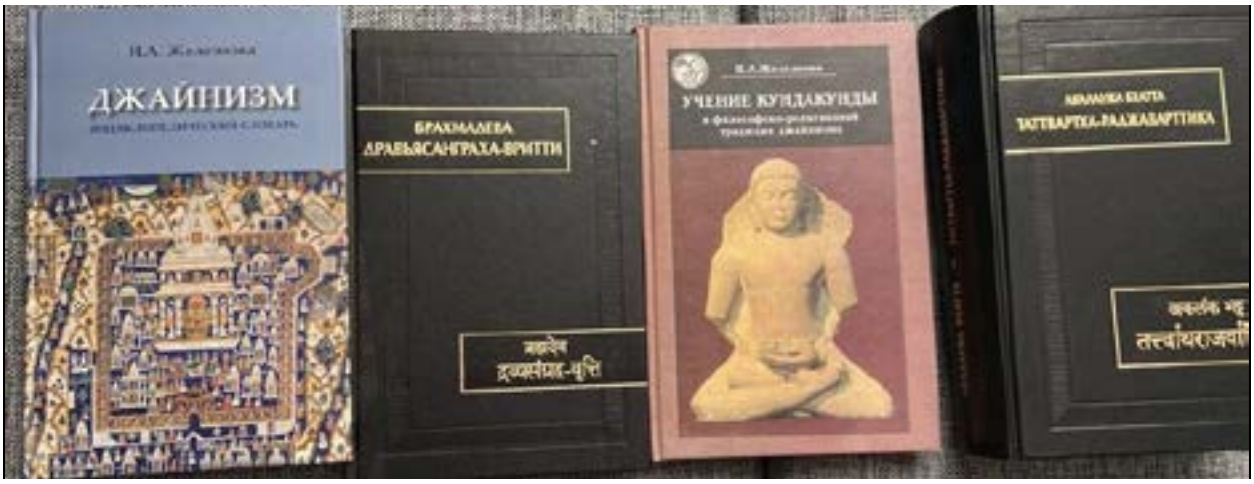

नतालिया झिलिज़नोवा की जैन धर्म से जुड़ी किताबें

के समाधान के लिए ये बेंगलूरु की प्रोफेसर हंपणा के पास अवश्य जाती हैं और उनसे चर्चा करके अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करती हैं। इसके अलावा धार्मिक और जीवन से जुड़े ज्ञान की खोज में वे मुनियों के चरणों में जाती हैं। राजस्थान के सांगानेर में एक गुरुकुल है, वहाँ के आचार्यों से बातचीत करके इन्हें शांति की अनुभूति होती है।

आम लोगों से मिलना, उनके जैसा सादा भोजन करना, उनके जीवन को क़रीब से जानना आदि भारत जाने के इनके मुख्य आकर्षण होते हैं। बातों का हमारा सिलसिला अबाध गति से बढ़ रहा था। हमारे पास भी सवाल थे और नतालिया भी हम से मिलकर बहुत ख़ुश थीं, उन्हें भी बहुत कुछ जानना-पूछना था; पर घड़ी की सुइयाँ तो टिक-टिक करती हुई बढ़ती जा रही थीं, कमेटी की मीटिंग ने हमारी समय-सीमा निर्धारित कर रखी थी। हमें बातचीत के उस ख़ुशनुमा सिलसिले को अगली बार तक के लिए स्थगित करना पड़ा। अनुभवों और अनुभूतियों का भंडार लेकर हम उस संस्थान से निकल आए पर नतालिया के अद्भुत व्यक्तित्व के प्रभाव में देर तक रहे। उसी प्रभाव को ही यहाँ पर शब्दबद्ध करने की कोशिश की है।

नतालिया का कार्यक्षेत्र सीमित है; पर उनके कार्य गहन हैं। उनका रुझान जैन धर्म के इतिहास की अपेक्षा उसके तत्त्व ज्ञान की ओर अधिक है। इसीलिए इनका शोध-क्षेत्र दार्शनिक पहलुओं से अधिक सम्बद्ध है, ऐतिहासिक से नहीं। उन्होंने अधिक काम दिगंबर सम्प्रदाय के बारे में किया है। उनकी अकादमिक उपलब्धियों पर लेख लिखने के लिए; पहले उनकी अब तक प्रकाशित पाँच पुस्तकों से थोड़ा परिचित होना होगा, नतालिया से बातचीत कर उन्हें बेहतर समझना होगा। उनके कामों के महत्त्व को रेखांकित करने के लिए उन्हें मिले इन दो पुरस्कारों का उल्लेख शायद पर्याप्त हो –

वर्ष 2010 में कुन्दकुन्द की कृतियों का रूसी में अनुवाद करने और जैन धर्म के अध्ययन में योगदान देने के लिए इन्हें 'कुन्दकुन्द पुरस्कार'

नतालिया झिलिज़नोवा और प्रगति टिपणीस

(भारतीय दिगंबर पुरस्कार, जो कुन्दकुन्द भारती में स्थापित किया गया था) से सम्मानित किया गया था, यह पुरस्कार इन्हें सोनिया गांधी के करकमलों से प्राप्त हुआ था।

प्राकृत का अध्ययन करने के लिए और प्राकृत ग्रंथों का रूसी में अनुवाद करने के लिए इन्हें वर्ष 2017 में, श्रवण बेलगोला (कर्नाटक, भारत) में, 'प्राकृत ज्ञानभारती अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था। यह पुरस्कार वर्ष 2004 में प्राकृत अध्ययन एवं अनुसंधान राष्ट्रीय संस्थान द्वारा स्थापित किया गया था। यह प्राकृत अनुसंधान में किए गए उल्लेखनीय योगदान के लिए दिया जाता है। पी. जैनी (यूएसए), डब्ल्यू. बोहले (जर्मनी), के. ब्रून (जर्मनी), एन. बलबीर (फ्रांस), ए. मेटे (जर्मनी), जे. ब्रोंखोर्स्ट (स्विट्जरलैंड), के. शोज्नाकी (फ्रांस) आदि भारतविद इसे प्राप्त करने वाले अन्य विद्वान हैं।

नतालिया से मिलना और उन्हें जानना हमारे लिए बहुत सुखद रहा और उन्हीं के माध्यम से हमारा पहली बार प्राच्य अध्ययन संस्थान जाना हुआ। यह संस्थान रूसी विज्ञान-अकादमी के तत्त्वावधान में कार्यरत है और इसका मुख्य उद्देश्य पूर्वी देशों की प्राचीनतम सभ्यताओं के बारे में अध्ययन कर प्राप्त जानकारी की प्रासंगिकता को वर्तमान परिवेश के अनुसार समझना है। यह विडम्बना ही तो है कि एक तरफ़ तो मनुष्य आपसी मतभेद को लेकर लड़ते-झगड़ते रहते हैं और दूसरी तरफ़ आपसी दूरियों को घटाने और दूसरों को बेहतर जानने के लिए सतत शोध में लगे रहते हैं। मानवीय सभ्यताओं के बीच पुल बाँधने से उच्चतर मानवीय कार्य क्या हो सकता है।

-प्रगति टिपणीस, मास्को, रूस

शशि पुरवार

इंदौर, मध्य प्रदेश में जन्मी और वर्तमान में मुंबई, महाराष्ट्र में रह रहीं शशि पुरवार सुप्रसिद्ध रचनाकार है। व्यंग्य, लघुकथा, नवगीत, दोहे, हाइकु आदि विधाओं में 5 पुस्तकें प्रकाशित हैं। 2 विशेषांकों का सम्पादन। '100 वुमन अचीवर्स ऑफ इंडिया', अवार्ड सहित कई प्रतिष्ठित संस्थाओं से सम्मानित/पुरस्कृत।

ईमेल - shashipurwar@gmail.com

मूर्खता की परछाईं

-शशि पुरवार

"घर में कोई बकर-बकर नहीं सुनता तो हमने भी दुनिया को सुनाकर खुद को महान बना लिया। ससुरा आज तक किसी ने तारीफ़ नहीं की है। घर में पत्नी बच्चे, माँ - बाप के लिए हम नकारा थे। कहतें हैं घर की मुर्गी दाल बराबर। सो थाली में कभी दाल भी नहीं मिलती थी। ..."

समय के साथ सब बदल जाता है। यह परम सत्य है। आदमी पहले दूसरों को मूर्ख बनाता था। आज खुद को मूर्ख बनाता है। आज मेरी मुलाकात अपनी ही परछाई से हो गयी। अब आप कहेंगे मूर्ख है। कोई परछाई से भी मिलता है। लेकिन हम मिले और जी भर कर मिले। जाने दीजिये आप सोच रहे होंगे आज सच में एक मूर्ख से पाला पड़ गया है। लेकिन हमें क्या ? आप सोचते रहें, इंसान मूर्ख ही तो है। आज स्वयं को मूर्ख कहने में हमें कोई संकोच नहीं। आभासी दुनिया के मूर्खता पूर्ण व्यवहार ने हमें होशियारी सीखा दी है। जब लम्बे समय से जुड़े हुए लोग पूछते हैं कि आप कौन है, क्या करतें है? तो सच मानिए दिल में छुरियां चल जाती है। क्या कभी पढ़ते नहीं हैं। बस आजकल गप्पबाजी करना ही शौक बन गया है। खुद को उच्च कोटि का साबित करने के लिए बार बार बिना सिर पैर की बात करतें है। खैर जाने दीजिये। आज मेरी परछाई ने मुझे ही मूर्ख कह दिया। हुआ यूँ कि-

आज एक प्रश्न मन में कौंधा...
मेरी परछाई कैसी हो?

प्रश्न अजीब था। किन्तु तीर तरकश से निकल चुका था। वैसे भी हम जाने माने साहित्यकार हैं तो परछाई भी वही हुई। किन्तु उसने हमीं पर पलटवार किया। कितना स्यापा

फैला रखा है। काम के न काज के, बस दिन भर उजूल फिजूल लिखकर लोगों को बरगलाते हो। कोई काम धाम नहीं है क्या ? किसे मूर्ख बनाते हो, खुद को ?

जबाब सीधे दिल को भेद गया। घर में कोई बकर-बकर नहीं सुनता तो हमने भी दुनिया को सुनाकर खुद को महान बना लिया। ससुरा आज तक किसी ने तारीफ़ नहीं की है। घर में पत्नी बच्चे, माँ - बाप के लिए हम नकारा थे। कहतें हैं घर की मुर्गी दाल बराबर। सो थाली में कभी दाल भी नहीं मिलती थी। हमने सोचा उल्लू क्या जाने अदरक का स्वाद। आज इंसान ने मूर्खता के पैमाने छलका दिए हैं। इस विचार ने हमें असीम शांति प्रदान की। किन्तु हमारी परछाई थी तो सत्य कैसे ना जानती। आज हमारे मूर्खता पूर्ण प्रश्न ने हमें मूर्ख सिद्ध कर दिया।

वैसे मूर्खता के कई प्रकार होते हैं। किसी एक परिभाषा में मूर्खता को कैसे परिभाषित करें। खुशफ़हमी मूर्खता को सर्वोपरि बनाती है। खुद का प्रचार करो, विज्ञापन करो और खुद को महान समझो। हमारे इर्द गिर्द ऐसे मूर्खों की भरमार है। शर्मा जी जब देखो ऊँट की गर्दन ताने घूमते रहतें है। सुना है बहुत बड़ा काम किए हैं। किन्तु अड़ोसी-पड़ोसी को पता भी नहीं है। सो ससुरे उनके बुद्धिजीवी दिमाग को क्या जाने। वो ऐसे तने रहतें है जैसे दुनिया भर का बोझ उन्हीं के सर पर है। एक बार सिंह अंकल हमें बगीचे में मिल गए और बोले- “लल्ला क्या करतें हो।“

हमने भी छूटते ही कह दिया–कवि हैं। कवि क्या होता है? उनका अगला प्रश्न !

हमारा चौड़ा सीना सिकुड़ कर पिचके गुब्बारे सा हो गया। समाज का यही दोष है दूसरों की पतंग काटो और आनंद लो। सभी रिश्ते आभासी होने लगे। खुद को महान समझने वाले मूर्ख, अहंकार में एक दूसरे से कन्नी काटते हैं। खुद की चार दीवारी में कैद अकेलेपन के साथी ऊँट की गर्दन ताने फिरते हैं। किसी से बात करने के लिए गर्दन नीचे करनी होती है। जो कोई करेगा नहीं। हम आज तक इस दुनियादारी को समझ नहीं सके कि गर्दन ऊँची क्यों है।

कल एक गोष्ठी में देखा शर्मा जी तन कर बैठे हुए थे। अड़ोसी-पड़ोसी उनके कर्मो के बारे में नहीं जानते थे। वे विशुद्ध लेखक थे। उजूल फिजूल लिखते-लिखते खुद को महान लेखक बना लिया। बड़ी अदा से घूमते थे। जैसे वही अक्लदाराज़ बाकी मूर्खों की बारात। खुशफ़हमी इंसान को ज़िंदादिल बना देती है। कम से कम सर में शंका का चूरन रखने से खुशफ़हमी का तेल लगाना ज्यादा अच्छा है। हम शर्मा जी को देखते ही रह गए। कितनी बड़ी हस्ती बन गए हैं। लोग एक फोटो चिपकाने के लिए तरसने है। किन्तु उन्हें क्या पता लोग उनका उपयोग किये जा रहे हैं। शर्मा जी की फ़ोटो चिपका कर अपना प्रचार कर रहें है। लोग एक दूसरे के कंधे पर पैर रखकर चढ़ने लगे है। यह सोच कर ही बेहद खुश है कि बहुत बड़ा तीर मार लिया है।

आजकल हमारे एक मित्र जिन्हें हमसे बेहद मोहब्बत है। जब देखो हमारी भाषा - विचारों को चुराते रहते हैं। खुद को महान सिद्ध करने की कोशिश में लगे रहते हैं। चोरी करके महान बन गए। आभासी दुनिया में जैसे ही उनसे

कहा कि यह तो मेरी रचना है तो वे झट से ब्लॉक कर गए। एक दूसरे को उल्लू बनाने से अच्छा है खुद को उल्लू बना लो। हमने सोचा रचना चोरी की है गुण नहीं, खुद को खुश कर लिया।

अब ज्यादा क्या कहें। यही कहेंगे खुद को मूर्ख बनाना अपने स्वास्थ के लिए लाभदायक होता है। हम तो यही कहेंगे खुद को खूब मूर्ख बनाओ। इसमें परमानन्द है। आप कहेंगे कैसे ?... तो सुने –

"खुद को महान समझने से आप कुछ महान कार्य करने का प्रयास करेंगे। इससे आप व्यस्त रहेंगे। कुछ अच्छा कार्य करेंगे।"

"खुद को देखने - समझने के आदी हो जायेंगे तो दूसरों की बातों पर ध्यान नहीं जायेगा। बिन सिरपैर की बातों को नजरअंदाज करेंगे तो बीपी शुगर जैसी बीमारी भी कोसों दूर रहेगी।"

"किसी बात की चिंता नहीं होगी क्योंकि आप खास है, दूसरो को मूर्ख जरूर समझे। और यह खुशफ़हमी आपको खुश रखेगी।"

"एक दूसरे को मूर्ख समझने की प्रथा से कुंठा, द्वेष, जलन से मुक्ति मिलेगी। और आप खुशफ़हम रहेंगे।"

"आपको अकेले में भी आनंद आने लगेगा। घर वाले आपके कोप का भाजन नहीं होंगे।"

"दोस्त, यार, हमजोली आपकी मूर्खता को बुद्धिजीवियों सा मान देंगे।"

"कोई सुने या ना सुने आप खुद को जरूर सुनेंगे।"

"हर तरफ परमानन्द होगा। लोगों की छींटाकसी पर आप मुस्कुरायेंगे और अपनी मूर्खता का ख़िताब उन्हें दे देंगे कि मूर्ख हैं, समझते नहीं हैं।

तो खुशफ़हमी को पहनते रहें। खुद को मूर्ख बनाते रहें। ज़िंदादिली दिखाते रहें।

खुद को लोगों को झेलने का सुख देते रहें। खुद भी हम मित्रों को झेलते रहें।

सभी हार्मोन कुशलता से कार्य करेंगे। खुशफ़हमी बीमारी से मुक्ति दिलाएगी। आप मुस्कुरायेंगे तो हम भी मुस्कुरायेंगे। शुक्रिया आपने हमारी मूर्खता को तवज्जो दी। मूर्खानंद की जय हो।

-शशि पुरवार

संजीव गौतम

आगरा, उत्तर प्रदेश में जन्में और सहकारिता विभाग में अपर जिला सहकारी अधिकारी के पद पर कार्यरत संजीव गौतम ग़ज़लकार हैं। एक ग़ज़ल संग्रह 'बुतों की भीड़ में' प्रकाशित है।

ईमेल - sanjeevgautam2010@gmail.co

ग़ज़लें

-संजीव गौतम

01.

ऐसा भी क्या कि दूर का रिश्ता बना दिया.
तुमने ज़रा सी बात का क़िस्सा बना दिया.

उसने तो पंख और दिया था ये आसमान,
किसने हमारी सोच में पिंजरा बना दिया .

मुट्ठी से पहले रेत उछाली फ़क़ीर ने,
फिर यूँ किया कि रेत में दरिया बना दिया.

हमने तो सिर्फ़ छाप दीं काग़ज़ पे उँगलियाँ,
उसने लकीरें खींच के चेहरा बना दिया.

इसको जगह-जगह से सियासत ने फाड़कर,
कैसा अजीब मुल्क का नक़्शा बना दिया.

जनता जो बदली भीड़ में, फिर भीड़ शोर में,
इसने समूचे देश को बहरा बना दिया.

बूढ़ा बना दिया मुझे बच्चों की फ़िक्र ने,
लेकिन फिर उनके बच्चों ने बच्चा बना दिया.

2.

ये न सोचो कि अंधेरा ही अंधेरा होगा।
रात तो रात है, बीतेगी, सवेरा होगा।

लौट आयेगा जो परदेश गया है भाई,
साथ बैठेंगे यहीं साथ बसेरा होगा।

सब परायों की तरह छोड़ चले जाते हैं,
क्या पता कौन सा मौसम यहाँ मेरा होगा।

एक दिन ये भी भरम उसका भी टूटेगा ज़रूर,
मौत के डर से उसे मैंने ही टेरा होगा।

याद जब मुझसे बिछड़कर उसे आयी होगी,
नाम पत्थर पे मेरा उसने उकेरा होगा।

आज दिल में जो उदासी सी घिरी आती है,
इसका मतलब उसे तन्हाई ने घेरा होगा।

मुझमें बैठा है मुख़ालिफ़ है मेरा ही लेकिन,
रोज़ कहता है कि कल मौत का फेरा होगा।

तू उसूलों की तरफ़दारी में रहता तो है,
जान ले दुनिया में कोई भी न तेरा होगा।

3.

कुरेदी जाने लगी है जो राख नफ़रत की।
ये कुछ नहीं है करामात है सियासत की।

बहुत तवील नहीं होती उम्र ज़ुल्मत की।
मगर ये रात कटे किस तरह क़यामत की।

उथल पुथल जो मची है तमाम धरती पर,
तो क्या इसे भी ज़रूरत है अब मरम्मत की।

अगर है पहले से बेहतर तो फिर बताओ मुझे,
भला क्यों होने लगी है कमी मुहब्बत की।

हमेशा माना है इंसानियत को हुकुमे ख़ुदा,
बताओ और ज़रूरत है क्या इबादत की।

इधर से हो या उधर से ग़लत, ग़लत ही है,
न अब से कोई कहानी शुरू हो दहशत की।

सवाल जब भी गरीबी का उससे पूछूँ तो,
सुनाने लगता है मुझको कहानी किस्मत की।

घरों से निकले तो वापस कभी न लौट सके,
कहानी एक है कश्मीर और तिब्बत की।

4.

छुई मुई से सिहरने लगे हैं क्या हम भी ।
नए सवालों से डरने लगे हैं क्या हम भी।

तमाम आइने हमने ही तोड़ डाले हैं,
तो पत्थरों में सँवरने लगे हैं क्या हम भी।

तुम्हारे साथ नहीं हैं वतन के साथ हैं हम,
इसी लिए ही अखरने लगे हैं क्या हम भी।

चमन में कोई नहीं है सहेज ले जो हमें,
इसी वजह से बिखरने लगे हैं क्या हम भी।

जिधर न एक भी लम्हा हमें सुकून का है,
उसी दिशा से गुज़रने लगे हैं क्या हम भी,

जो ख़ुद ही डूबा है ख़ुद में उसी समंदर में,
जज़ीरे जैसे उभरने लगे हैं क्या हम भी।

किसी की चीख सुनाई नहीं हमें देती,
समय से पहले ही मरने लगे हैं क्या हम भी।

गिला न शिकवा शिकायत किसी से अब हमको,
तुम्हीं बताओ सुधरने लगे हैं क्या हम भी।

मुझे जो लगता है क्या वो तुम्हें भी लगता है
बुलंदियों से उतरने लगे हैं क्या हम भी।

5.

वो जो फिल्मों को ही इतिहास समझ लेता है।
राजगद्दी को ही सन्यास समझ लेता है।

क्या ये बीमार है, पागल है या मूरख है समाज,
जो कि क्रंदन को भी उल्लास समझ लेता है।

मन के आकाश में दिखता है सितारों की तरह,
कौन है जो मेरे अहसास समझ लेता है।

मुफलिसी को भी दिखा देता है वो आईना,
भूखा हो पेट तो उपवास समझ लेता है।

ज़िंदगी कुछ न बिगाड़ेगी कभी भी उसका,
जो इसे मौत का अभ्यास समझ लेता है।

वो तो दुनिया में भी रहकर है परे दुनिया से,
दुनियादारी को ही वनवास समझ लेता है।

हाले दिल उसको बताते हुए डरता है दिल,
वो कहानी को उपन्यास समझ लेता है।

-संजीव गौतम

स्व-चित्र (ड्राइंग)
6”x8” इंच , इंक ऑन पेपर
राजेश प्रसाद श्रीवास्तव

प्रेरणा गुप्ता

ब्यावर, (राजस्थान) भारत में जन्मी और वर्तमान में कानपुर (उत्तर प्रदेश) में रह रहीं प्रेरणा गुप्ता लघुकथा, कहानी, कविता एवं संस्मरण आदि विधाओं में लेखन कर रहीं हैं। एक लघुकथा संग्रह 'सूरज डूबने से पहले' प्रकाशित।

ईमेल - prernaomm@gmail.com

1. नीम की छाँह

-प्रेरणा गुप्ता

तो तली आज वह पूरे बीस साल बाद, अपनी नानी के गाँव आया था। सब कुछ कितना बदल-सा गया था।

जब वह माँ के साथ यहाँ रहने आता था, तब नानी अक्सर उसे शिष्टाचार की बातें सिखाया करती थी। जिसे सुनकर वह चिढ़ जाता था। समय के साथ वह अपनी पढ़ाई में इतना व्यस्त हो गया कि फिर कभी उसका इधर आना ही नहीं हुआ।

मगर आज वह नानी की तेरहवीं पर गांव आया था। दिन भर लोगों से मिलता-जुलता रहा, मगर बहुत बेचैन था। उसके मन में बचपन की यादें हिलोरे मार रहीं थी। न तो अब नानी थी और न ही बचपन का वह प्रेम।

खुली हवा में वह मन बदलने के लिए बगीचे में चला गया। जहाँ कभी उसके नन्हें हाथों ने नीम के एक छोटे-से पौधे को रोपा था। जब कभी वह मामा से उसका हाल पूछता तो वह हँसकर कहते, "नानी से ही पूछो, वह रोज उसे दुलराने जाती हैं।" तभी उसने नानी के प्यार को महसूस किया था।

बगीचे में अभी भी सब कुछ वैसा ही था। वही कुआँ, आम के ढेर सारे पेड़। नहीं थी तो बस नानी। तभी वह ठिठका, "अरे! ये तो वही नीम का पेड़ है, जिसे उसने रोपा था।" उसने नीम को ऊपर से नीचे तक देखा, अब वह बहुत बड़ा हो गया था। उसके तने को सहलाता हुआ वह बोला, "लो मैं आ गया। हर दिन मैंने तुम्हें याद किया है।"

नीम की टहनियाँ हवा में यूँ लहरा उठीं, मानो उसे देखकर उसे दुलरा रही हों। देर तक वह उसकी छाँह में बैठा रहा। अचानक वह उठकर मिटटी में पड़ी निमकौरियाँ बीनता कह उठा, "नानी, जब तुम डाँटती थी, तब सचमुच नीम की तरह कड़वी लगती थी। लेकिन आज जब तुम नहीं हो तो तुम्हारी यादों के बीज अपने साथ लिए जा रहा हूँ।"

2. प्रतिबद्धताओं की पराकाष्ठा

वह एक दीवार है। कभी वह मुँडेर हुआ करती थी, खुले आसमान में उड़ते पंछियों को देखती तो कभी सूरज, चाँद, सितारों तक सैर कर आया करती थी। यहाँ तक कि जब कभी कोई चिड़िया या कबूतर आकर उस पर बैठते तो उनसे बोलती-बतियाती थी और वो अपराजिता की बेल, जो उससे लिपटती ऊपर की ओर बढ़ती चली जा रही थी। जब उसपर नीले-सफ़ेद फ़ूल खिलने का वक़्त आया। तभी घर में एक कमरे की ज़रूरत आ पड़ी, और तब वह मुंडेर से दीवार बना दी गयी। ठीक उसके सामने और अग़ल-बग़ल, पुरानी तीन दीवारों का सहारा ले, उसके ऊपर एक छत भी ढाल दी गयी।

कितना इतराई थी वह। रंग रोगन होने के बाद, जब उसका नवरूप खिल आया था। गर्व से भर उठी थी। एक छत की ज़िम्मेदारी उठाने योग्य, जो ख़ुद को समझने लगी थी। वह घर की सबसे मज़बूत दीवार कहलायी थी।

उस पर एक कील ठोंक कर एक घड़ी टाँग दी गयी। फिर तो वह घड़ी की टिक-टिक के साथ धड़कने भी लगी। एक के बाद एक बहुत सारी साज-सज्जा की वस्तुएँ एवं घर के कुछ दिवंगत लोगों की तस्वीरें भी उस पर टाँग दी गयी थीं। बख़ूबी निभाए रखा उसने अपनी एक के बाद एक सभी जिम्मदारियों को।

तभी अचानक हथौड़े के तेज प्रहार से छटपटाती, वह अपने अतीत से बाहर आ निकली। किसी ने आज बाबाआदम के ज़माने की भारी भरकम एक नक्काशीदार खूँटी, उस पर गाड़ दी थी। वह ऊपर से नीचे तक तेज़ी से डगमगा उठी। वह चीख़ना चाहती थी। मगर तभी उसे अपने सिर पर टिकी छत का ख़्याल हो आया। ख़ुद को ज़ब्त कर फ़ौरन उसने अपनेआप को सम्हाल लिया। क्योंकि वह एक दीवार ही नहीं, बल्कि उस घर की आड़ भी थी। तमाम कोशिशों के बाद, न चाहते हुए भी आख़िर वह भरभराकर गिर ही पड़ी।

मगर उसके आग़ोश में दबी घड़ी अभी भी मंद गति से चल रही थी। उसने जैसे ही

उसके साथ अपनी धड़कन मिलानी चाही, अचानक घड़ी की टिक-टिक सुनाई देनी

बन्द हो गयी।

-प्रेरणा गुप्ता

जय त्रिपाठी

दृश्य कला(विजुअल आर्ट) में भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय से सीनियर फैलोशिप प्राप्त कला समीक्षक जय त्रिपाठी लेखक, व कलाकार के रूप में कार्यरत हैं। तीन दशक से कला पर लेखन। चार दशक से कलाकार के रूप में सक्रिय। देश विदेश में कई समूह कला- प्रदर्शनियों में भागीदारी। अनेक कला शिविरों में शामिल। तीन एकल प्रदर्शनियाँ।

ईमेल - jaitripathi@gmail.com

भारतीय कला-जगत की समृद्ध परंपरा के कलाकार : रमेश बिष्ट

-जय त्रिपाठी

"यह जानना बहुत दिलचस्प होता है कि कैसे कोई कलाकार कला परंपरा से समृद्ध होता हुआ स्वयं में ज्ञान मीमांसा का स्रोत बन जाता है और एक बौद्धिक कलाकार की भूमिका अदा करने लगता है। कलाकार बनने की और एक श्रेष्ठ मूर्तिकार के रूप में निर्माण की प्रारंभिक ज्ञान मीमांसक प्रक्रिया का स्वरूप कैसा रहा..."

"भारतीय प्रागैतिहासिक मानव ने भाषा के अभाव में जीवन से सम्बन्धित भावाभिव्यक्ति का सर्वप्रथम माध्यम रेखांकन को बनाया। इसके उपरान्त उसने अनेक स्थूल उपायों एवं माध्यमों द्वारा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया, इन रेखीय आकृतियों को उत्तर पाषाण काल से गुफाओं आदि में पत्थरों, खड़िया, गेरू, बाँस व अन्य कठोर धातुओं से गढ़ा जाता रहा। कंदराओं और गुफाओं में मानव चित्रण के जो भी प्रमाण मिले हैं वो इतने गहरे हैं कि आज भी मौजूद हैं। अभिव्यक्ति का यह सिलसिला थमा नहीं बल्कि अति आधुनिक समय के साथ

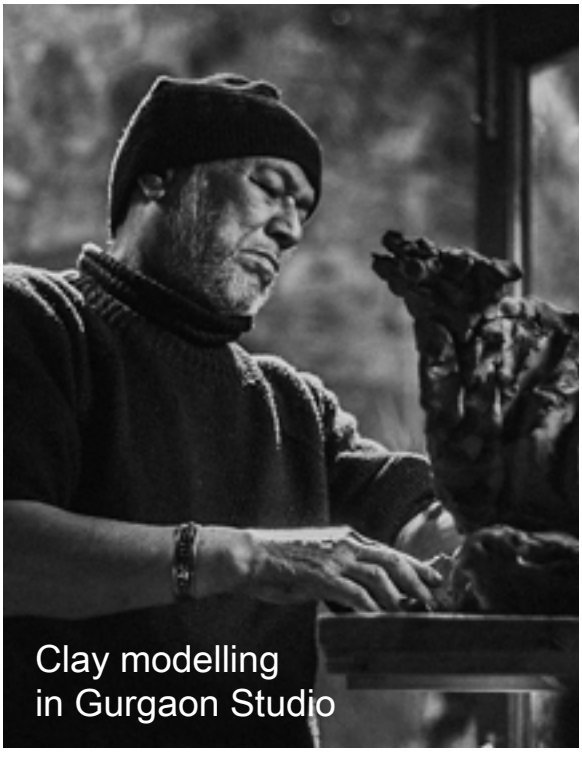

Clay modelling
in Gurgaon Studio

Unknown Riders 2,
Bronze, 28x97x64 cm

Behind the sky
Bronze 28x117x69 cm

मानव के विचारों और कल्पनाओं को साकार करते हुए निरंतरता के साथ आगे बढ़ता गया और चित्रकारों की वैचारिक सोच और बौद्धिकता के साथ उच्चस्तरीय रेखांकनों में परिलक्षित होता गया जो कि समकालीन आधुनिक कलाकारों के कामों में रेखांकन की गम्भीरता के साथ उनकी रचनात्मक क्षमता के साथ देखा जा सकता है।

साथ ही साथ यह जानना भी बहुत दिलचस्प होता है कि कैसे कोई कलाकार कला परंपरा से समृद्ध होता हुआ स्वयं में ज्ञान मीमांसा का स्रोत बन जाता है और एक बौद्धिक कलाकार की भूमिका अदा करने लगता है। चित्रकार बनने से लेकर एक श्रेष्ठ मूर्तिकार के रूप में निर्माण की प्रारंभिक ज्ञान मीमांसक प्रक्रिया का स्वरूप कैसा रहा, उसकी एक बानगी इस कलाकार के बचपन में हुई एक घटना से समझी जा सकती है। इसके पूर्व जब मैं इस घटना का जिक्र कर रहा हूँ तो कलाकार का परिचय कराना भी आवश्यक जान पड़ता है। यह और कोई नहीं एक शांति पसंद आधुनिक कला जगत के वरिष्ठ समकालीन मूर्तिकार और चित्रकार रमेश बिष्ट हैं। अब मैं उस घटना विशेष पर आता हूँ जब यह कलाकार छोटा सा ही था, यह प्राय: अपने घर के आसपास की दीवारों और पेड़ों पर आकृतियाँ उकेर देता था। यह उस जगह की बात है, जहाँ प्राय: दूर-दूर तक इक्का- दुक्का इंसान ही नज़र आते थे, शेष पशु-पक्षी ही विचरते थे। यह जगह थी पौढ़ी गढ़वाल के लैंसडाउन के घने जंगलों के बीच बसा वह गाँव जहाँ सीमित आबादी थी पर भरे पूरे परिवार में जन्म लेने वाला यह बच्चा हर दिन की भाँति जब दीवारों पर अपने आस-

"रमेश रेखाओं को सिर्फ खींचते ही नहीं बल्कि रेखाएँ ऐसे गढ़ते हैं जो परत दर परत उनके वैचारिक दृश्य को आकार देने की ओर बढ़ती हैं, जहाँ काली स्याही से कई तरह के शेड पैदा करने की इनकी अद्भुत क्षमता चित्र संरचना की परिकल्पना को आकार देने लगती है, वहीं मोटे गाढ़े रेखाओं के ब्रश स्ट्रोक और उस पर काले रंग के शेड् मिलकर जब कागज की सतह पर फैलते हुए एकाकार होते हैं तो रेखाओं के इस जादूगर की आँखों में विशेष चमक आ जाती है..."

पास की गतिविधियों को अंकित कर रहा था तो अचानक इनके सबसे बड़े भाई ने इनको यह सब करते देख लिया और इन्हें समझाते हुए चित्रकार के जीवन की कठिनाइयों को वर्णित करते चले गये। यह बात रमेश बिष्ट के दिलों-दिमाग में घर कर गयी और इन्होंने भी अपने भाई की तरह चित्रकार बनने की ठान ली। इनके बड़े भाई कोई और नहीं बल्कि प्रसिद्ध चित्रकार रणवीर सिंह बिष्ट थे। जब बचपन से ही कोई व्यक्ति अपने इर्द-गिर्द की चीजों के आकार देने लगे तो कला

After Freedom
Bronze 35x100x55 cm

उसके मन मस्तिष्क में बैठ जाती है, और समय के साथ-साथ यह ज्ञान मीमांसा विस्तृत आकर भी ले लेती है। इन्होंने पत्थरों के पहाड़ हों, चट्टान हो जंगल हो, खाली सड़कें हों या हो नदी, नहर या समुद्र की रेत, कोरा कागज हो या छपा हुआ अखबार, पेपर की प्लेट हो या चाय की चुस्की से भीगा हुआ पेपर, कोई दीवार हो या कोई दरवाजा किसी भी सतह को अपनी ताबड़तोड़ रेखाओं से अछूता न रखा। इन्होंने रेखाओं के जरिये सम्मोहन रचा।

रमेश रेखाओं को सिर्फ खींचते ही नहीं बल्कि रेखाएँ ऐसे गढ़ते हैं जो परत दर परत उनके वैचारिक दृश्य को आकार देने की ओर बढ़ती हैं, जहाँ काली स्याही से कई तरह के शेड पैदा

"समकालीन मूर्तिकार रमेश के बेजुबान जानवरों के गतिशील मूर्तिशिल्प को देखकर दर्शक की आंखें नम हो जाती हैं, अत: आप यह अंदाज़ लगा सकते हैं कि किस तन्मयता से इनको रचा गया होगा। बिष्ट जी जिस तन्मयता से अपने शिल्पों को आकार देते हुए सजग रहते हैं उतना ही भारतीय मूर्तिशिल्प-कला को लेकर भी काफी सजग हैं..."

करने की इनकी अद्भुत क्षमता, चित्र संरचना की परिकल्पना को आकार देने लगती है, वहीं मोटे गाढ़े रेखाओं के ब्रश स्ट्रोक और उस पर काले रंग के शेड् मिलकर जब कागज की सतह पर फैलते हुए एकाकार होते हैं तो रेखाओं के इस जादूगर की आँखों में विशेष चमक आ जाती है। रमेश बिष्ट जी को जानना जितना आसान है उतना ही कठिन है उनकी रचनात्मक क्षमता को पहचानना। बचपन से ही कठोर और तप भरी जीवन शैली इनकी रेखाओं का आईना है। यही कारण मुझे जान पड़ता है कि रमेश बिष्ट नियमित रेखांकन को विजवुल कला का पहला गुण बताते हैं।

इन्होंने अनगिनत कालजयी रचना रची जिस पर छोटे और बड़े आकार के कई चित्र हैं। इन चित्रों की श्रृंखला में प्रत्येक रचना अलग-अलग आकारों में होते हुए भी अपने रचित समय

Unknown Riders 1
Bronze, 18x48x66 cm

का दस्तक देती हैं, जिनमें काली सुर्ख स्याही का प्रयोग बड़े नाटकीय अंदाज में किया गया है। काली स्याही से काम करना इनको भाता है, और यदि मोटे कागज का पेपर या जिस सतह पर उन्हें काम करना हो वह बड़े आकार का है तब तो रमेश जी तब तक उससे दूर नहीं होते जब तक कि उसमें कोई आकृति ना गढ़ दें। स्याही में भीगे बड़े-बड़े ब्रश हों या पेन, पेंसिल, खड़िया, चौक, चारकोल या और भी कुछ जिससे रेखाएँ खींची जा सकें, उनसे आकृतियों को रचते हुए आज इस मुकाम पर पहुँचे हैं कि इनके रचित चित्रों को देखने वाला विस्मित भाव से बस उसको निहारता रह जाता है। काली सुर्ख रेखाओं के दायरे को घटाना-बढ़ाना, सूक्ष्म अन्तर्दर्शी कला-चेतना को

Untitled, Ink on paper 51x44 cm

मांजकर यह कलाकार जब अपनी आत्मा को रेखाओं के वृतों में घेरकर आकार देता है, तब वह एक उत्कृष्ट रेखाचित्र के रूप में हमारे सामने आता है।

जिस प्रकार यह चित्रकार चित्र बनाने के लिए आड़ी-तिरछी रेखाओं का प्रयोग करता है, उसी प्रकार रेखाचित्र जीवन की विविध घटनाओं, व्यक्तियों और दृश्य का ऐसा सजीव चित्र उपस्थित करता है कि दर्शक के सम्मुख वह व्यक्ति, स्थान, वातावरण या प्रसंग साकार हो उठता है। अपने रेखाचित्रों के सम्बन्ध में बिष्ट जी अधिक तो नहीं बोलते पर यह जरूर महसूस करते हैं और कहते हैं -

"मैं मौलिकता की रेखाओं से अपने अनुभव के चित्र उतारने का प्रयास करता हूँ और निरंतर सोचता हूँ कि मैं इन रेखाओं को तूलिका या पेंसिल से खींच सकता तो कितना अच्छा होता और फिर रच डालता हूँ।"

उनके इस कथन में बहुत संजीदगी और गंभीरता से भरी गहराई है कि चित्र छोटा हो या बड़ा इससे फर्क नहीं पड़ता हाँ वह चलते और जीवंत होने चाहिए। कला के लिए समर्पित इनकी इस दुनिया में कई मोड़ भी आये, जहाँ कई अभूतपूर्व बदलाव हुए, जिसे स्वीकारते हुए बिष्ट जी कहते हैं कि-

"कला की दुनिया में कोई भी अवधारणा या विचारधारा एक सी नहीं रहती यह कला की परिपक्वता के साथ बदलती रहती है जैसे कि जब मैं अपने गाँव के आस-पास के जानवरों को अंकित करते स्कूल से कॉलेज और कॉलेज से

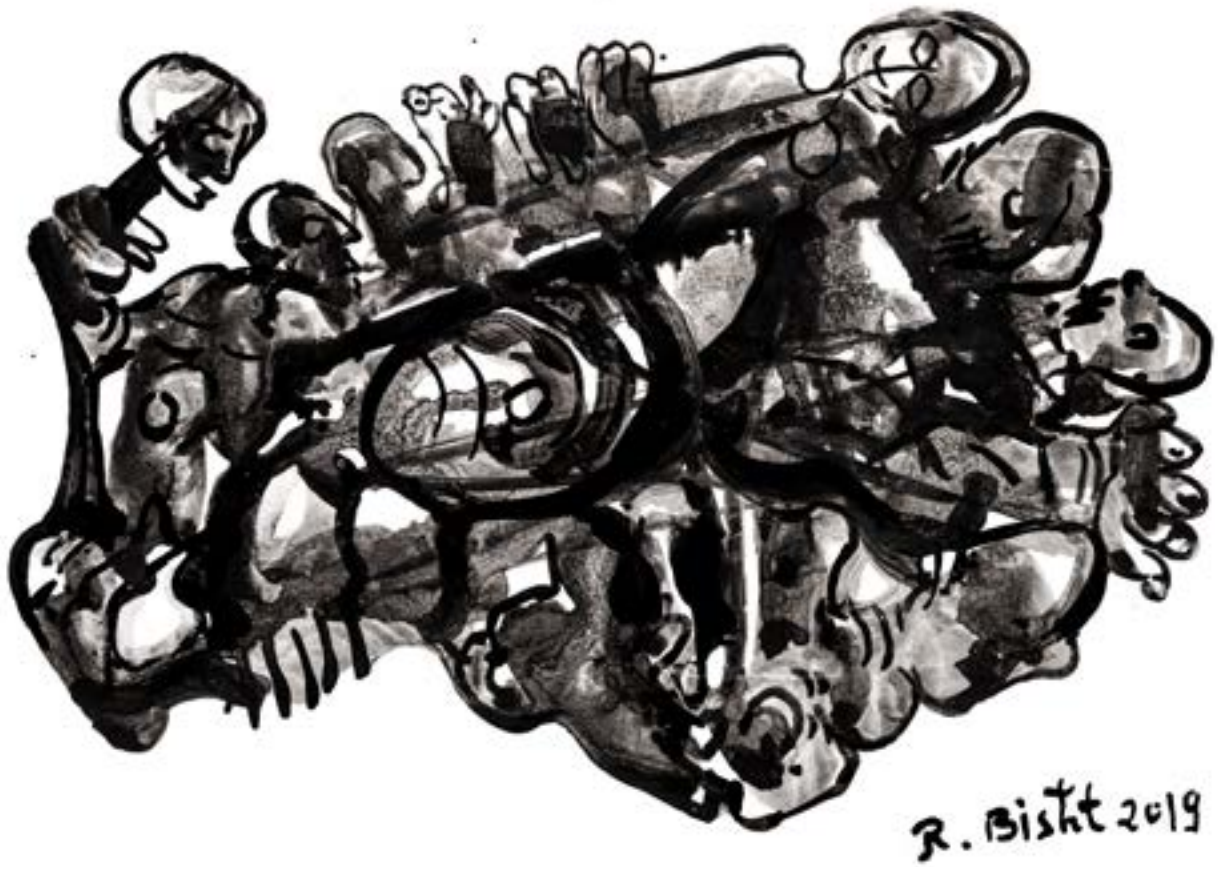

Untitled, Ink on paper 51x44 cm

लखनऊ कला महाविद्यालय गया तो मेरी कला के प्रति अवधारणा बदल गयी। मैं बनने गया था चित्रकार और रास आ गयी मूर्तिकला और फिर मूर्तिशिल्प में मेरा कदम आगे बढ़ गया। फिर क्या था दिल्ली आ गया और यहाँ से कई बार देश-विदेश की यात्रा की और मेरी अवधारणा के साथ-साथ विचारधारा में भी परिपक्व बदलाव आये।"

इस मूर्तिकार का रचना संसार प्रकृति की धूपछाँही परिवेश में फैला यथार्थ रूप है। जिसमें कई तरह के जानवरों और मानव आकृतियों वाले भावों से भरे शिल्प नजर आते हैं। शिल्प भावों के साथ-साथ गतिशील होते हैं जो कि उनको सजीव, मर्मस्पर्शी व संजीदा बनाते हैं। यह बात मैनें उनके शिल्पों देखकार महसूस भी की, यही एक परिपक्व चित्रकार और मूर्तिकार की विशिष्टता भी होती है। सुना था आकृतियाँ बोलती हैं पर रमेश बिष्ट के बोलते शिल्प प्रेक्षक से बात भी करते हैं। समकालीन मूर्तिकार रमेश के बेजुबान जानवरों के गतिशील मूर्तिशिल्प को देखकर दर्शक की आंखें नम हो जाती हैं, अत: आप यह अंदाज़ लगा सकते हैं कि किस तन्मयता से इनको रचा गया होगा। बिष्ट जी जिस तन्मयता से अपने शिल्पों को आकार देते हुए सजग रहते हैं उतना ही भारतीय मूर्तिशिल्प-कला को लेकर भी काफी सजग हैं। एक बातचीत के संदर्भ में वह अजंता एलोरा से लेकर देश-विदेश के कई तरह के मूर्तिशिल्पों के बारे में समझाते हुए

Untitled, Ink on paper 78x99 cm

Untitled, Ink on paper 78x99 cm

बताते हैं कि जहाँ तक मूर्तिशिल्प का संदर्भ है, भारतीय मूर्तिशिल्प की एक समृद्ध परंपरा रही है और आज भी मूर्तिशिल्प की विविध विधाओं में विविध प्रकार का गंभीर और मूल्यवान काम रचा जा रहा है जो संसार की किसी भी शिल्प परम्परा से तुलनीय है। इस संदर्भ में वह एक निवेदन करते हैं कि भारतीय मूर्तिशिल्प का एक आयाम है जो अजंता एलोरा आदि में देखा जा सकता है। भारतीय शिल्पकारों ने इसे अपनी समृद्ध परंपरा से, अपने आत्मवादी दर्शन और गहन चिंतन से रचा है। बात को आगे बढ़ाते हुए वह माइकल एंजलो से लेकर कई बहुआयामी कलाकारों का जिक्र करते हुए शिल्पों की स्थूलता, गतिशीलता, सुंदरता और जीवंतता की बारीकियों को बताते हैं उनकी यह ज्ञान मीमांसा उनके कामों में भी परिलक्षित होती है जोकि एक कलाकार के लिए अहम और उपयोगी होती है। अपनी इन्हीं खूबियों से देश-विदेश में अपनी विशिष्ट पहचान रखने वाले समकालीन आधुनिक वरिष्ठ मूर्तिकार रमेश बिष्ट कोरोना काल में भी लगातार काम करने के लिए कला के प्रति प्रतिबद्ध हैं। उनके इस काल के काम को शीघ्र ही हम एक बड़ी चित्र प्रदर्शनी में देखेंगे जिसका कला जगत को व हम सभी को इंतज़ार है।

-जय त्रिपाठी

मुख्य पृष्ठ एवं अन्य छायाचित्र :
पुलक बिष्ट

पाठकीय प्रतिक्रियाएँ

1.

अनन्य पत्रिका ताज़गी के साथ एक उत्कृष्ट अन्तरराष्ट्रीय पत्रिका के रूप में उभर कर सामने आ रही है। डॉ.जगदीश व्योम जी का सम्पादकीय बहुत प्रभावशाली एवं ज्ञानवर्धक रहा। अनूप भार्गव जी का हिन्दी प्रेम ही है जो इस पत्रिका के रूप में इतनी खूबसूरती से हमारे सामने आया है। लघुकथा, कहानी, गीत-नवगीत, ग़ज़ल, लेख, व्यंग्य, कला आदि से संबंधित स्तरीय रचनाएँ इसकी शोभा बढ़ा रही हैं। इस अंक में विशेष तौर पर सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ.धर्मवीर भारती जी की पच्चीसवीं पुण्यतिथि पर आदरणीय पुष्पा भारती जी के लेख और धर्मवीर भारती जी के गीत ने चार चाँद लगा दिये हैं ।

-रेणु चन्द्रा माथुर

2.

अनन्य में अनेक विधाओं का परिवार अच्छा लगा। गीत, गजल, कहानियाँ मन को छूते हैं। डा.ओमप्रकाश सिंह के नवगीतों ने पढ़ने को बाध्य किया। शशि पाधा की रचना और ओमप्रकाश यती की गजलें अच्छी लगीं। तेजेन्द्र शर्मा की कहानी आधुनिकता और अभिनव शैली की श्रृंखला मनोरम है। अन्य रचनाएँ भी पठनीय और प्रशंसनीय हैं। डॉ व्योम जी की संपादकीय पाठकों को पहले ही आकर्षित कर लेती है। संपादक मंडल को अनेकानेक बधाई। सादर प्रणाम।

-शिवानन्द सिंह 'सहयोगी', मेरठ

3.

अनन्य के फरवरी अंक के लिए धन्यवाद! डॉ. जगदीश व्योम जी के संपादकत्व में यह पत्रिका दिनों दिन निखर रही है। विश्व साहित्य की धरोहर गोर्की (आज से गोरिकी) के शहर तक की यात्रा और संग्रहालय से रूबरू कराते लेख 'गोरिकी का घर' और रूसी भाषा के शब्दों का हिंदी में सही उच्चारण बताने और जीवंत चित्रण प्रस्तुत करने के लिए प्रगति टिपणीस जी को हार्दिक धन्यवाद और बधाई।

अनूप भार्गव जी के हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए किये जा रहे भागीरथ प्रयत्नों के सुखद और उत्साहवर्धक परिणाम सामने आने लगे हैं।

-तनवीर आलम, दिल्ली

4.

'अनन्य' का फ़रवरी का अंक मिला। आदरणीय डॉ जगदीश व्योम जी ने अपने संपादकीय में बसंत का भारत में आगमन के साथ प्रवासी भारतीयों का स्वागत भी किया। जिन लोक भाषाओं ने भारत की लोक संस्कृति और साहित्य को समृद्ध किया, उनके भविष्य को लेकर जगदीश व्योम जी की चिंता स्वाभाविक है। उनके द्वारा उद्धृत पद्माकर, रसखान और ईसुरी के छंद अपने काव्य सौष्ठव से मंत्रमुग्ध कर दिया। डॉ अशोक अज्ञानी जी के बासंती छंद बसंत के मूड के अनुसार लगे। राम किशोर जी के नवगीत बहुत ख़ूबसूरत हैं, विशेषकर 'अम्मा'। डॉ राजकुमार सिंह जी का 'हिंदी बोलियों का सिकुड़ता संसार' भारत की लोकभाषाओं और

उपभाषाओं की विस्तृत जानकारी देता है। किस प्रकार अपने जन्मगत संस्कार भूल कर आधुनिक दिखने के चक्कर में हम अपनी बोलियों से तो क्या हिंदी बोलने में भी कतराने लगे हैं। अन्य रचनाएं भी बहुत सुंदर और सारगर्भित हैं।

आदरणीय व्योम जी, समस्त टीम और लेखकों को बहुत बधाई।

-अन्नदा पाटनी, अमेरिका

5.

'अनन्य' के फरवरी अंक का सम्पादकीय और डॉ. राजकुमार सिंह का गंभीर और विस्तृत लेख हमें आज लुप्त होने की कगार पर खड़ी अपनी बोलियों के प्रति सजग और सचेत करता है। सूर्यबाला जी की कहानी जैसे आज के हर एकल परिवार की झलक हो, विनय उपाध्याय जी का उत्तम शैली में लिखा लेख वसंत के अग्रदूत और महाप्राण निराला को उत्तम श्रद्धांजलि है। दोनों लघु-कथाएँ प्रासंगिक और समाज के ज्वलंत मुद्दों को व्यक्त करती हैं।

काव्य की दृष्टि से भी यह अंक अत्यंत समृद्ध है - कविताएँ, नवगीत, छंद सभी ज़िन्दगी के रंगों को कुछ ऐसे बिखेर रहे हैं जैसे बसंत में प्रकृति सर्वत्र बिखेरती है।

शास्त्री नित्यगोपाल कटारे जी का व्यंग्य भी पसंद आया। अमूर्त चित्रकारी के अहम नाम अम्बादास खोरबोगडे और उनके कला-संसार को जानना सुखद अनुभव रहा, इस परिचय के लिए वेद प्रकाश भारद्वाज जी का हार्दिक आभार।

कुल मिलाकर इस सार्थक और अत्यंत पठनीय अंक के कुशल संकलन और संपादन के लिए जगदीश व्योम जी को नमन और बधाई।

पत्रिका का ब्लर्ब भी वासंती पवन के स्पर्श-सा है।

-प्रगति टिपणीस, मॉस्को (रूस)

6.

वसंत के अनगिनत रंगों व सभी प्रकार के फूलों की महक समेटे हुए डॉ० जगदीश व्योम जी द्वारा लिखित 'अनन्य' का संपादकीय पृष्ठ पढ़कर ही मन वसंतमय हो गया। जिसका आग़ाज़ इतना खूबसूरत हो, उसका अंजाम तो स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है।

डॉ० अशोक अज्ञानी जी के वासंती छंद, वसंत पर्व विभिन्न रंगों से सराबोर हैं। दाहिया जी के सभी नवगीत भाव और भाषा को बिम्बों के माध्यम से चित्रात्मक रूप में प्रस्तुत करते प्रतीत होते हैं।

इसके अतिरिक्त डॉ० राजकुमार सिंह जी के आलेख 'हिन्दी की बोलियों का सिकुड़ता संसार', कविताओं, लघुकथाओं, कहानियों, गद्य और पद्य की अनेक रोचक व ज्ञानवर्द्धक रचनाओं का संगम, यह पत्रिका अपने आप में साहित्य की एक अनन्य कृति है। इसके लिए पूरे संपादक-मण्डल और रचनाकारों को बधाई देती हूँ।

-मधु गोयल, लखनऊ

चित्र और चित्रकार

चित्रकार : राजेश प्रसाद श्रीवास्तव
Artist: Rajesh P Shrivastava
Title: I am a stone lady
Size: 66”x48” oil shaving on canvas